

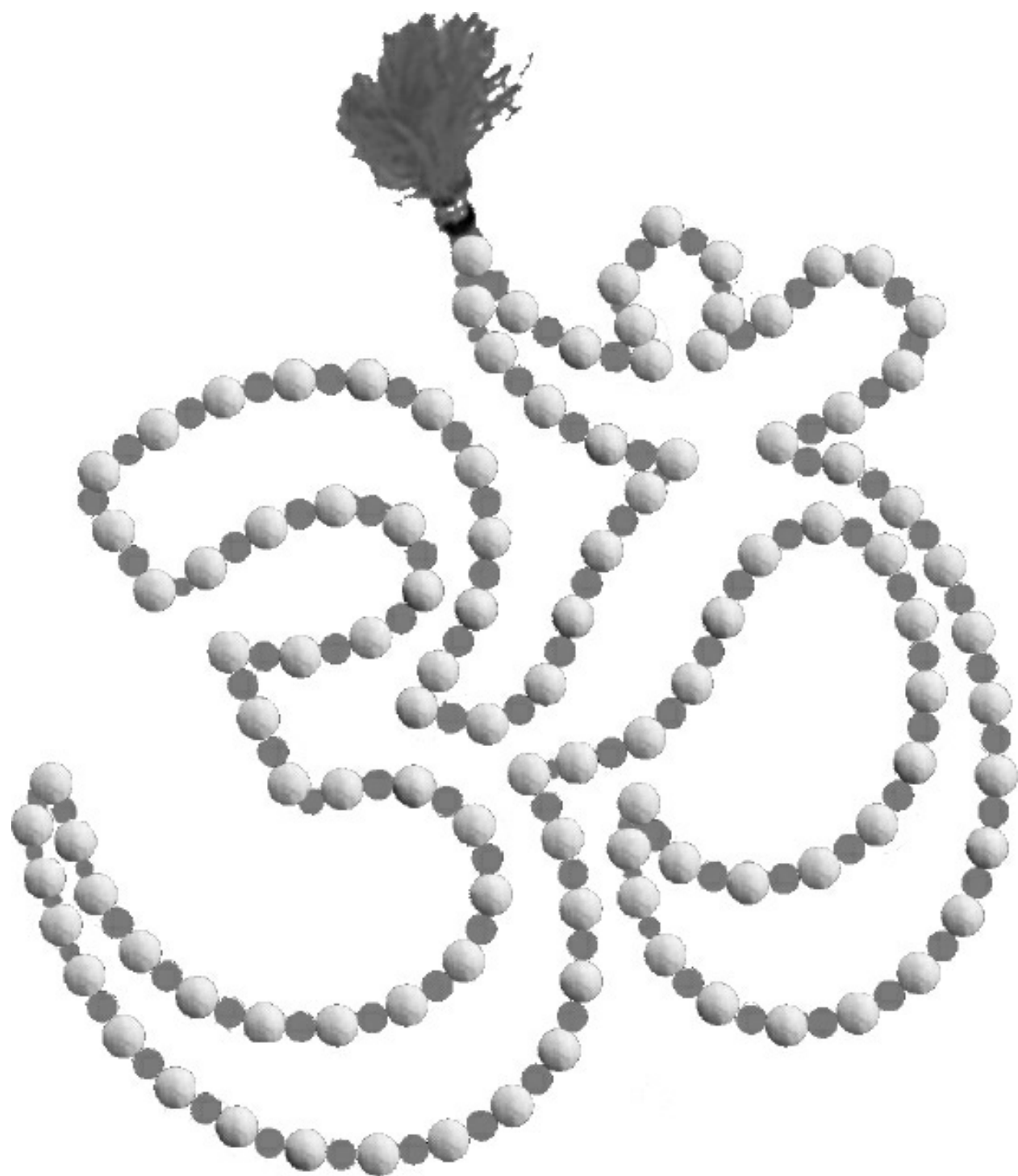
नित्यानन्द मिश्र

# ॐ माला

ओंकार के अर्थ



BLOOMSBURY



# समर्पण

पूज्य पिताजी को समर्पित

जनिता भी उपनेता भी, विद्यादाता तदनन्तर,  
अन्नदाता भयत्राता, आप हो मेरे पञ्च पितरः”

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति।  
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

—चाणक्यनीति

# अनुक्रमणिका

1. [समर्पण](#)
2. [पाठकों के लिए निर्देश](#)
3. [पुरोवाक्](#)
4. [ॐ माला](#)
  1. [ओम्, त्रिदैवत, त्रिदैवत्य \(१\)](#)
  2. [ओम्, उद्गीथ, त्र्यवस्थान \(२\)](#)
  3. [ओम्, त्रिधाम, त्रिमुख \(३\)](#)
  4. [ओम्, उद्गीथ, त्रिब्रह्म \(४\)](#)
  5. [ओम् \(५\)](#)
  6. [ओम् \(६\)](#)
  7. [ओम् \(७\)](#)
  8. [ओम् \(८\)](#)
  9. [ओम् \(९\)](#)
  10. [ओम् \(१०\)](#)
  11. [ओम्, त्रिगुण \(११\)](#)
  12. [ओम् \(१२\)](#)
  13. [ओम् \(१३\)](#)
  14. [ओम्, त्रिमात्र \(१४\)](#)
  15. [ओम् \(१५\)](#)
  16. [ओम् \(१६\)](#)
  17. [ओम् \(१७\)](#)
  18. [ओम्, ओंकार \(१८\)](#)
  19. [ओम्, प्रणव \(१९\)](#)
  20. [ओम्, ओंकार \(२०\)](#)
  21. [ओम् \(२१\)](#)
  22. [ओम् \(२२\)](#)
  23. [ओम्, प्रणव \(२३\)](#)
  24. [ओम् \(२४\)](#)
  25. [ओम् \(२५\)](#)
  26. [ओम्, पञ्चाक्षर \(२६\)](#)
  27. [ओम् \(२७\)](#)
  28. [ओम् \(२८\)](#)
  29. [ओंकार/ओङ्कार \(२९\)](#)

30. [प्रणव \(३०\)](#)
31. [प्रणव \(३१\)](#)
32. [प्रणव \(३२\)](#)
33. [प्रणव \(३३\)](#)
34. [प्रणव \(३४\)](#)
35. [प्रणव \(३५\)](#)
36. [प्रणव \(३६\)](#)
37. [प्रणव \(३७\)](#)
38. [प्रणव \(३८\)](#)
39. [प्रणव, ओंकार \(३९\)](#)
40. [उद्गीथ, त्रिमात्र \(४०\)](#)
41. [उद्गीथ \(४१\)](#)
42. [उद्गीथ \(४२\)](#)
43. [उद्गीथ \(४३\)](#)
44. [उद्गीथ, सूर्यान्तर्गत \(४४\)](#)
45. [अक्षर \(४५\)](#)
46. [अक्षर \(४६\)](#)
47. [स्वर \(४७\)](#)
48. [स्वर \(४८\)](#)
49. [आदिबीज \(४९\)](#)
50. [आदित्य \(५०\)](#)
51. [अद्वैत \(५१\)](#)
52. [अनादि \(५२\)](#)
53. [अनन्त \(५३\)](#)
54. [अव्यय \(५४\)](#)
55. [भवनाशन \(५५\)](#)
56. [बिन्दुशक्ति \(५६\)](#)
57. [ब्रह्म, परब्रह्म \(५७\)](#)
58. [ब्रह्मबीज, वेदबीज \(५८\)](#)
59. [ब्रह्माक्षर \(५९\)](#)
60. [ध्रुव, ध्रुवाक्षर \(६०\)](#)
61. [दिव्य \(६१\)](#)
62. [दिव्यमन्त्र \(६२\)](#)
63. [एक \(६३\)](#)
64. [एकाक्षर \(६४\)](#)
65. [गुणबीज, गुणजीवक \(६५\)](#)
66. [हंस \(६६\)](#)

67. [ईशान \(६७\)](#)
68. [लोकसार \(६८\)](#)
69. [मन्त्रादि, मन्त्राद्य \(६९\)](#)
70. [नारायण \(७०\)](#)
71. [निरञ्जन \(७१\)](#)
72. [पञ्चरश्मि \(७२\)](#)
73. [परम \(७३\)](#)
74. [परमाक्षर \(७४\)](#)
75. [प्रभु \(७५\)](#)
76. [प्रलय \(७६\)](#)
77. [प्रस्वार \(७७\)](#)
78. [रस \(७८\)](#)
79. [रुद्र \(७९\)](#)
80. [सर्वपावन \(८०\)](#)
81. [सर्वविद् \(८१\)](#)
82. [सर्वव्यापी \(८२\)](#)
83. [सत्य \(८३\)](#)
84. [सेतु \(८४\)](#)
85. [शब्द \(८५\)](#)
86. [श्रुतिपद \(८६\)](#)
87. [शुक्ल \(८७\)](#)
88. [सूक्ष्म \(८८\)](#)
89. [तार \(८९\)](#)
90. [त्रैकाल्य \(९०\)](#)
91. [त्रिधातु \(९१\)](#)
92. [त्रिक \(९२\)](#)
93. [त्रिलिङ्ग \(९३\)](#)
94. [त्रिप्रज्ञ \(९४\)](#)
95. [त्रिप्रतिष्ठित \(९५\)](#)
96. [त्रिप्रयोजन \(९६\)](#)
97. [त्रिरवस्थ \(९७\)](#)
98. [त्रिस्थान, त्र्यवस्थान \(९८\)](#)
99. [त्रिवृत् \(९९\)](#)
100. [त्र्यक्षर \(१००\)](#)
101. [वैद्युत \(१०१\)](#)
102. [वर्तुल \(१०२\)](#)
103. [वेदादि \(१०३\)](#)

- 104. [वेदारम्भ \(१०४\)](#)
- 105. [वेदात्मा \(१०५\)](#)
- 106. [विष्णु \(१०६\)](#)
- 107. [विष्णु \(१०७\)](#)
- 108. [विश्व \(१०८\)](#)
- 109. [ओम् \(१०९\)](#)

5. [नामसूची](#)

# पाठकों के लिए निर्देश

यह पुस्तक सामान्य पाठकों और विद्वानों दोनों के लिये है, अतः पढ़ने की सुविधा की दृष्टि से कुछ विशिष्ट नियम अपनाए गए हैं—

१) इस पुस्तक में कोई भी पादटिप्पणी (footnote) या अन्तटिप्पणी (endnote) नहीं है। अंग्रेज़ी में टिप्पणियाँ परिशिष्ट के रूप में <http://independent.academia.edu/MisraNityanand> पर प्रकाशित हैं।

२) पुस्तक का प्रत्येक भाग (माला का प्रत्येक मनका) परस्परोन्मुख बाएँ और दाएँ पृष्ठों पर या पूर्ण रूप से एक पृष्ठ पर ही संयोजित है।

३) महाभारत के भीष्म पर्व में स्थित श्रीमद्भगवद्गीता को सुविधा के लिये केवल गीता कहकर संदर्भित किया गया है।

४) श्रीमद्भागवत पुराण को भागवत पुराण कहकर और देवी भागवत पुराण को देवी भागवत कहकर संदर्भित किया गया है।

५) बृहद् योगी याज्ञवल्क्य स्मृति को केवल योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहकर संदर्भित किया गया है।

६) 'वेदों' और 'वैदिक ग्रन्थों' से अर्थ है वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, और उपनिषद्।

७) मनकों का क्रम वही है जो अंग्रेज़ी संस्करण में है, ताकि दोनों भाषाओं के संस्करणों का एक-साथ अध्ययन करने वाले पाठकों को सुविधा हो। किसी नाम को खोजने के लिये हिन्दी के पाठकों के लिये अकारादि क्रम से नामसूची परिशिष्ट में दी गयी है।



# पुरोवाक्

प्रस्तुत पुस्तक इसलिये विशेष है क्योंकि इसका विषय केवल एक शब्द है—ॐ। तथापि यह पुस्तक ॐ रूपी सागर की कुछ बूँदों का संग्रह मात्र है। पुस्तक कुछ महीनों में लिखी गयी है जबकि ॐ को समझने के लिए एक जीवनकाल भी अपर्याप्त है। शुक्ल यजुर्वेद की *वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता* कहती है कि ॐ आकाशरूप ब्रह्म है। यह रूपक उचित ही है, जिस प्रकार अनन्त आकाश की सीमा नहीं उसी प्रकार ॐ के अर्थों का अन्त नहीं। उपनिषद् भारतीय दर्शन के शिरोमणि ग्रन्थ हैं, और अनेक उपनिषदों में ॐ पर गहन चर्चा है। कालिदास के अनुसार श्रुति के अर्थ का स्मृति अनुसरण करती है, और स्मृतियों में ॐ का अत्यन्त रुचिकर वर्णन है। भारत के दो अप्रतिम इतिहास ग्रन्थों—*रामायण* और *महाभारत*—में ॐ की प्रशंसा है। आधुनिक हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति के स्तम्भ-भूत पुराणों में ॐ का अनेक प्रकार से वर्णन है। योग दर्शन संपूर्ण मानवता को भारत की देन है, और इस दर्शन में ॐ का बहुत मान है। तन्त्र के गुह्य एवं रहस्यमय मार्ग में ॐ आदृत है। भक्ति से अनुप्राणित वैष्णव मत, शैव मत, और शाक्त मत में ॐ श्रद्धा का आस्पद है। ॐ अनेक जैन और बौद्ध मन्त्रों का भाग है और सिक्ख धर्म के एक शब्द (*इक्क ओअंकार*) के रूप में भी प्रशस्त है। ॐ का हिन्दू धर्म के सभी प्रमुख संप्रदायों और भारत के सभी प्रमुख धर्मों में आदर है। इस कारण से कोई भी पुस्तक योगियों द्वारा नित्य ध्यान किये जाने वाले इस अतिसूक्ष्म और महार्थ शब्द का पूर्ण चित्रण तो क्या, आंशिक चित्रण भी नहीं कर सकती।

फिर इस पुस्तक का उद्देश्य क्या है? ॐ को संस्कृत ग्रन्थों में अनगिनत नामों से जाना जाता है, और इनमें से अधिकांश नामों को अनेक प्रकार से समझा जा सकता है। इस पुस्तक में संस्कृत के अनेक ग्रन्थों—हिन्दू शास्त्रों के साथ-साथ कोशों, काव्यों, नाटकों, और संगीत-व्याकरण-आयुर्वेद के ग्रन्थों—में प्राप्त ॐ के चौरासी (८४) नामों और उनके विविध अर्थों की प्रस्तुति है। इस पुस्तक में प्रस्तुत सभी नाम संस्कृत ग्रन्थों से लिये गये हैं और उनके अर्थ भी संस्कृत व्याकरण के अनुसार हैं, तथापि अन्य भाषाओं के ग्रन्थों से यथोचित उदाहरण दिये गये हैं। उपनिषदों और पुराणों में प्राप्त ॐ की चर्चा बहुत पुस्तकों का विषय है। इस पुस्तक में उपनिषदों और पुराणों के साथ-साथ ॐ के नामों की अनेक विरल व्याख्याएँ योग दर्शन, तन्त्र शास्त्र, और संस्कृत भाष्यों से संगृहीत हैं।

इस पुस्तक में १०९ भाग हैं, और प्रत्येक भाग में ॐ के एक नाम या एक से अधिक परन्तु सट्श नामों के अर्थ प्रस्तुत किये गये हैं। अर्थ के साथ-साथ प्रत्येक भाग में नामों की व्याख्या, संबन्धित परम्पराओं की सूची, और शास्त्रीय उद्धरणों के अनुवाद भी दिये गये हैं। अधिकांश भागों में नामों की व्युत्पत्ति भी दी गयी है। जपने वाली माला में १०९ मनके होते हैं, जिनमें १०८ मनके मन्त्र जपने के लिये प्रयुक्त होते हैं और गुरु मनका (सुमेरु मनका) जाप की आवृत्तियाँ गिनने के लिए प्रयुक्त होता है। माला की प्रत्येक आवृत्ति पूर्ण होने पर माला फेरने की दिशा उलट दी जाती है।

सुमेरु मनके की एक ओर के मनके से प्रारम्भ होकर १०८ मनकों पर जाप के पश्चात् सुमेरु के दूसरी ओर के मनके पर माला की एक आवृत्ति पूर्ण होती है। इस पुस्तक के पहले १०८ भाग माला के जपने वाले १०८ मनके हैं, और इसका अन्तिम भाग माला का सुमेरु मनका है। चूँकि ॐ मूलतः एक संस्कृत का शब्द है और संस्कृत शब्दों का सर्वश्रेष्ठ ज्ञान संस्कृत व्याकरण से ही संभव है, पुस्तक के अन्तिम मनके में संस्कृत व्याकरण परम्परा के अनुसार ॐ के उन्नीस अर्थों को समझाया गया है।

इस पुस्तक में संस्कृत के अनेक शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों, और श्लोकों के अनुवाद दिये गये हैं। मैं रामानन्दीय संप्रदाय में दीक्षा प्राप्त वैष्णव हूँ और मेरा विशिष्टाद्वैत दर्शन में अडिग विश्वास है। कोटि-कोटि रामानन्दियों की भाँति मेरे लिए श्रीराम ही परम ब्रह्म हैं। इस कारण से जिन-जिन स्थानों पर व्याख्याकारों में सैद्धान्तिक मतभेद है मैंने वहाँ-वहाँ द्वैतपरक वैष्णव अर्थ को ही प्रस्तुत किया है। पुस्तक में प्रस्तुत अधिकांश अनुवाद शब्दानुवाद न होकर भावानुवाद हैं। स्पष्टता के लिए आवश्यकता के अनुसार अध्याहार किया गया है और अनुवादों को संक्षिप्त भी किया गया है।

आशा है इस पुस्तक के पाठक इससे लाभान्वित होंगे। पुस्तक में त्रुटियाँ न रह जाएँ इसका पूरा प्रयास किया गया है, तथापि अनेक प्रारूप-संशोधनों के पश्चात् भी संभव है कुछ त्रुटियाँ पुस्तक में रह गयी हों। पाठकों से अनुरोध है कि इस संस्करण में उन्हें जो भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो, वे मुझे एवं प्रकाशक को सूचित करें ताकि अगले संस्करण में उसका निवारण हो सके। इसके लिए पाठक मुझे ट्विटर ([@MisraNityanand](https://twitter.com/MisraNityanand)) पर संपर्क कर सकते हैं अथवा प्रकाशक को लिख सकते हैं।

जिस प्रकार ॐ के अर्थ अनन्त हैं, उसी प्रकार इस पुस्तक में योगदान देने वालों की सूची भी अनन्त है। मैं सबका कृतज्ञता-ज्ञापन तो नहीं कर सकता केवल उनमें से अग्रगण्य उपकारकों का उल्लेख कर सकता हूँ। इस सूची में सर्वप्रथम हैं मेरे गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य। ईश उपनिषद् पर उनके विशद संस्कृत भाष्य का प्रारम्भ ही इस पुस्तक की प्रेरणा है। इसके अनन्तर मेरे इष्ट श्रीराम और ॐ का स्मरण करता हूँ, दोनों एक और अभिन्न हैं (मनके २०, २१, २२) और यह उनकी ही कृपा है कि इस पुस्तक का हिन्दी संस्करण मैंने अपने वैयक्तिक जीवन के कठिनतम भाग में अनेकानेक यात्राओं में व्यस्त होते हुए सात स्थानों पर (मुम्बई, नयी दिल्ली, उदयपुर, भोपाल, हॉङ्ग-कॉङ्ग, मकाऊ, और सिङ्गापुर) पूर्ण किया है। मेरी माता को पुस्तक का अंग्रेज़ी संस्करण समर्पित था, उनके उपकारों की निष्कृति कोटि-कोटि जन्मों में भी असंभव है। मेरी पुत्री निलया और मेरे पुत्र निरामय मुझे प्रतिदिन पितृत्व-सुख देने के साथ-साथ बहुत कुछ सिखाते भी हैं, और उनके रिमत आनन को देखकर ही मेरी लेखनी चलती है ऐसा मेरा मानना है। प्रतिदिन भारतीयविद्वत्परिषत् पर भी कुछ नया सीखने को मिलता है; परिषत् के सदस्यों ने इस पुस्तक के लेखन के समय अनेक अवसरों पर मेरी सहायता की है। संस्कृत ग्रन्थों के अर्थ समझने में मैंने अनेक प्राचीन, अर्वाचीन, और आधुनिक टीकाकारों की कृतियों की सहायता ली है, मैं उन सबके सम्मुख नतमस्तक हूँ। अनीता जिंने ने पुस्तक के टङ्कण और प्रारूप-संशोधन कार्य में अद्भुत सहायता की है। कुशल चित्रकार मौलिक मावाणी

द्वारा चित्रित नटराज के चित्र के लिये मैं धन्यवाद देता हूँ। प्रणव निरंजनी और सुधीर कुडुचकर ने पुस्तक के आवरण पृष्ठ की माला का प्रारूप बनाया है, मैं उनका अधमर्ण हूँ। प्रवीण तिवारी और बलूमज़बरी के कर्मियों को पुस्तक के हिन्दी संस्करण के प्रकाशन के लिए हार्दिक धन्यवाद प्रस्तुत है। हिन्दी संस्करण के विषय में पुनः पुनः जिज्ञासा करके मेरा मनोबल बढ़ाने के लिए प्रणव मिश्र और फ़ेसबुक के अनेक मित्रों का मैं आभारी हूँ।

यह पुस्तक पञ्च-पितर-स्वरूप (जनिता, उपनेता, विद्यादाता, अन्नदाता, और भयत्राता) मेरे पिताजी को समर्पित है।

नित्यानन्द मिश्र

मुम्बई, दिसम्बर २०१७

# ॐ माला

(१)

ओम्, त्रिदैवत, त्रिदैवत्य

अर्थ

त्रिदेव [से युक्त]—ब्रह्मा, विष्णु, और शिव

व्याख्या

यह संभवतः ओम् (ॐ) का सर्वाधिक लोकप्रिय अर्थ है। ॐ यह एक वर्ण तीन ध्वनियों से बना है—अ, उ, और म्। संस्कृत में गुण सन्धि के नियमों के अनुसार जब अ और उ वर्ण मिलते हैं तो उनके स्थान पर ओ एकादेश होता है। यथा सूर्य + उदय = सूर्योदय। इस प्रकार अ + उ + म् मिलकर ओम् (ॐ) बनता है।

ॐ की ये तीन ध्वनियाँ क्रमशः विष्णु, शिव, और ब्रह्मा हैं। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति और कतिपय पुराणों के अतिरिक्त ॐ की तीन ध्वनियों का ऐसा अर्थ कोशादि ग्रन्थों द्वारा भी प्रमाणित है। एकाक्षर कोश के अनुसार अ का अर्थ विष्णु है और उ का अर्थ शिव है। इसी कोश में म के तीन अर्थ उक्त हैं—शिव, चन्द्रमा, और ब्रह्मा। इनमें से ब्रह्मा ॐ के मकार का अर्थ लिया गया है।

स्मृति और तन्त्र ग्रन्थों में ॐ के त्रिदैवत और त्रिदैवत्य ये दो नाम प्राप्त हैं। दैवत और दैवत्य शब्द √दिव् धातु से व्युत्पन्न हैं। इसी धातु से देव शब्द भी निष्पन्न होता है। संस्कृत का देव शब्द यूनानी के θεός (theos) शब्द और लैटिन के deus शब्द से संबद्ध है ऐसी मान्यता है। अंग्रेज़ी का divine (“दिव्य”) शब्द लैटिन के deus शब्द से संबद्ध है। यद्यपि √दिव् धातु के धातुपाठ में दस अर्थ उक्त हैं, इस संदर्भ में धातु का अर्थ है “चमकना”। अतः त्रिदैवत और त्रिदैवत्य इन नामों का अर्थ है वह जिसमें तीन द्युतिमान् देव (ब्रह्मा, विष्णु, और शिव) हैं।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु, और संहारकर्ता शिव एक ही परब्रह्म के तीन रूप हैं। तात्पर्य यह है कि ॐ परब्रह्म ही है। यह तात्पर्य इस पुस्तक में प्रस्तुत अनेक अर्थों में ध्वनित होगा।

परम्परा

स्मृति, पुराण, तन्त्र, भाष्य।

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्; त्रि + दैवत → त्रिदैवत; त्रि + दैवत्य → त्रिदैवत्या

अ ▶ विष्णु; उ ▶ शिव; म् ▶ ब्रह्मा त्रि ▶ तीन; दैवत ▶ देवा दैवत्य ▶ देवा

उद्धरण

ॐ त्रिदैवत [कहलाता है]। ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्र है अतः त्रिदैवत्य कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

अकार विष्णु कहा गया है, उकार तो महेश्वर (शिव) है, मकार से ब्रह्मा कहे गये हैं। प्रणव (ॐ) से तीनों माने जाते हैं।

—विविध पुराण

ॐ अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, और शिव।

—मार्कण्डेय पुराण

ओंकार में त्रिविध रूप है; त्रिविध अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, और शिव स्वरूपा।

—लिङ्ग पुराण, उसपर टीका

ओङ्कार त्रिदैवत [कहलाता है]।

—बीजवर्णाभिधान

(२)

## ओम्, उद्गीथ, त्र्यवस्थान

अर्थ

तीन लोका

व्याख्या

लोक शब्द का यौगिक अर्थ है जो देखा या जाना जाता है। यह शब्द √लोक धातु (“देखना”) से निष्पन्न है। वेदों में पृथ्वी, अन्तरिक्ष (आकाश या वायुमण्डल), और द्यौः (स्वर्ग) ये तीन लोक वर्णित हैं। अन्यत्र स्वर्ग, पृथ्वी, और पाताल को त्रिलोक माना गया है। यद्यपि कहीं-कहीं सात लोकों और चौदह लोकों का भी वर्णन प्राप्त होता है, तथापि *तीनों लोकों* से समस्त ब्रह्माण्ड या संपूर्ण सृष्टि अभिप्रेत है। हिन्दू शास्त्रों में तीनों लोकों को एकसाथ *त्रिलोकी* भी कहा जाता है।

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और स्वर्ग को क्रमशः भूः, भुवः, और स्वः भी कहा जाता है। ये तीन शब्द सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र की महाव्याहृतियों के रूप में उच्चारित (बोले) जाते हैं। बहुत लोगों में एक भ्रान्ति है कि तीन महाव्याहृतियाँ वैदिक गायत्री मन्त्र में जोड़ी गयी हैं। सत्य तो यह है कि महाव्याहृतियों सहित संपूर्ण गायत्री मन्त्र शुक्लयजुर्वेद की *वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता* के ३६वें अध्याय में प्राप्त है। इसी अध्याय में तीनों लोकों के दूसरे नाम—*द्यौः*, *अन्तरिक्षम्*, और *पृथिवी*—से प्रारम्भ होने वाला शान्ति मन्त्र भी प्राप्त है। इसी शान्ति मन्त्र को ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः इस संक्षिप्त रूप में बोला जाता है।

अनेक हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ॐ का एक अर्थ है तीनों लोक। विशेषतः अ का अर्थ है पृथ्वी, उ का अर्थ है अन्तरिक्ष, और म् का अर्थ है स्वर्ग। उपनिषदों में ॐ का एक प्रसिद्ध नाम है उद्गीथ। इसकी तीन अवयव ध्वनियों—उत्, गी, और थ—को छान्दोग्य उपनिषद् में क्रमशः स्वर्ग, अन्तरिक्ष, और पृथ्वी कहा गया है। ॐ तीनों लोकों में व्याप्त है यह मान्यता है। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण के अनुसार तीनों लोकों की उत्पत्ति ॐ से ही हुई है (८)। ॐ संपूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त है यह सिद्धान्त अक्षर (४७), हंस (६६), सर्वव्यापी (८२), विष्णु (१०७), और विश्व (१०८) आदि ॐ के कई नामों में व्यञ्जित होता है। ॐ का स्थान तीनों लोकों में है, अतः इसे त्र्यवस्थान, अर्थात् “तीन अवस्थानों या निवासों वाला”, भी कहा जाता है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्; उत् + गी + थ → उद्गीथ; त्रि + अवस्थान → त्र्यवस्थान।

अ ▶ पृथ्वी; उ ▶ अन्तरिक्ष; म् ▶ स्वर्ग। उत् ▶ स्वर्ग; गी ▶ अन्तरिक्ष; थ ▶ पृथ्वी। त्रि ▶ तीन;  
अवस्थान ▶ निवास-स्थान।

उद्धरण

उद्गीथ में स्वर्ग ही उत् है, अन्तरिक्ष ही गी है, और पृथ्वी ही थ है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

ॐ भूः (पृथ्वी), भुवः (अन्तरिक्ष), और स्वः (स्वर्ग) है, अतः त्र्यवस्थान [कहलाता] है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

अकार तो भूलोक (पृथ्वी) ही है, उकार भुवलोक (अन्तरिक्ष) कहा जाता है, और वह व्यञ्जन  
मकार तो स्वलोक (स्वर्गलोक) कहा जाता है।

—विविध पुराण

ॐ—इसका अर्थ है तीन लोक।

—विविध पुराण

(३)

## ओम्, त्रिधाम, त्रिमुख

अर्थ

१ तीन अग्नि (गार्हपत्य, दक्षिण, आहवनीय) २ माता, पिता, और गुरु

व्याख्या

अनादि काल से सनातन वैदिक धर्म में अग्नि का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋग्वेद संहिता का प्रारम्भ *अग्निम्* शब्द से हुआ है और इसकी पहले सूक्त में अग्निदेव की स्तुति है। अग्निहोत्र का पालन करने वाले हिन्दू तीन अग्नियों का प्रयोग करते हैं। *गार्हपत्य* (“गृहपति से संयुक्त”) अग्नि सदैव प्रज्वलित रहती है, *दक्षिण* (“दक्षिण दिशा की अग्नि”) अग्नि में पूर्वजों को आहुति दी जाती है, और *आहवनीय* (“आहूत, बुलायी गयी”) अग्नि का प्रयोग यज्ञ के लिये होता है। *प्रश्न उपनिषद्* में इन तीन अग्नियों को *अपान*, *व्यान*, और *प्राण*—शरीर की ये तीन प्राणशक्तियाँ कहा गया है।

कई हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ॐ का अर्थ *त्रेताग्नि* (तीन अग्नियाँ) है। इसी कारण से ॐ को *त्रिधाम* और *त्रिमुख* भी कहा जाता है। यहाँ *धाम* (“धारण करनेवाला”) का अर्थ अग्नि का स्थान है। क्योंकि तीन अग्नियाँ तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रज्वलित रहती हैं, इसलिये ॐ को *त्रिधाम* कहा जाता है। अग्नि में आहुति का भक्षण होता है ऐसी मान्यता है, इसलिये *हव्यभुक्* और *हुताशन* भी अग्नि के नाम हैं। तीन अग्नियों द्वारा हव्य और आहुति का भक्षण करने के कारण ॐ को *त्रिमुख* (“तीन मुख वाला”) कहा जाता है।

*मैत्री उपनिषद्* में तीन अग्नियों की तुलना पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और स्वर्ग से की गयी है। जिस प्रकार तीनों लोकों से ब्रह्माण्ड अभिप्रेत है, उसी प्रकार त्रेताग्नि से अग्नितत्त्व या अग्निदेव अभिप्रेत है। वेदों और पुराणों में अग्नि को पवित्र करने वाला माना गया है। यही कारण है कि ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में अग्नि को *पावक* कहा गया है। अभिप्राय यह है कि अग्नि के समान ॐ भी पवित्र करने वाला है—ॐ का *सर्वपावन* (८०) नाम इसका प्रमाण है।

ऊष्मा और प्रकाश का स्रोत होने से अग्नि ज्ञान का प्रतीक है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि *ज्ञानाग्नि* (ज्ञान की अग्नि) सभी कर्मों को भस्म कर देती है। अनेकानेक विविध विषयों के ज्ञान का *अग्नि पुराण* में अप्रतिम और अद्भुत समावेश है। अग्नि की भाँति ही ॐ को भी सर्वज्ञ माना जाता है। यह सिद्धान्त ॐ के *सर्वविद्* और *सर्वज्ञ* (८१) नामों द्वारा व्यञ्जित है।

*मनुस्मृति* में कहा गया है कि पिता, माता, और गुरु तीन अग्नियाँ हैं। इस वचन के अनुसार ॐ का एक और अर्थ निकलता है माता, पिता, और गुरु का अत्यन्त आदरणीय त्रिका। *तैत्तिरीय उपनिषद्* में इन तीनों को देव समान माननेवाला बनने का उपदेश है। *उपनिषद्* में इसी संदर्भ में *अतिथिदेवो भव* (“अतिथि को देव मानने वाले बनो”) का प्रसिद्ध उपदेश है।



परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्; त्रि + धाम/मुख → त्रिधाम/त्रिमुख

अ, उ, म् ▶ तीन अग्नियाँ (त्रेताग्नि)। त्रि ▶ तीन; धाम ▶ [अग्नि का] निवास, स्थान। मुख ▶ मुँहा

उद्धरण

अकार गार्हपत्य अग्नि है ... उकार दक्षिणाग्नि है ... मकार आहवनीय अग्नि है।

—अथर्वशिखा उपनिषद्

ॐ त्रिधाम [कहलाता] है—तीन अग्नियाँ ... त्रिमुख [कहलाता] है—तीन अग्नियाँ।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ॐ—यह तीन अग्नि स्वरूप है।

—विविध पुराण

(४)

## ओम्, उद्गीथ, त्रिब्रह्म

अर्थ

१ वेदत्रयी (तीन वेद) २ तीन तपः

व्याख्या

यद्यपि वेदों की संख्या चार है, कतिपय उपनिषद् और रामायण आदि अनेक शास्त्रों में बहुत तीन वेदों का ही उल्लेख है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद। *गरुड पुराण* में वर्णन आता है कि पहले एक ही वेद था जिसे महर्षि वेदव्यास ने चार में विभाजित किया। पारम्परिक आख्यानों के अनुसार मूलभूत एक वेद में अधिकांश मन्त्र तीन प्रकार के थे—ऋक्, यजुष्, और साम—और इसलिये उसे वेदत्रयी कहा जाता था। कुछ स्रोतों के अनुसार जब तीन वेदों का उल्लेख होता है तब चतुर्थ अथर्ववेद उनमें अन्तर्भूत माना जाता है।

अनेक हिन्दू शास्त्रों के अनुसार ॐ का एक अर्थ है वेदत्रयी। *मनुस्मृति* पर एक टीका के अनुसार अकार का ऋग्वेद से, उकार का यजुर्वेद से, और मकार का सामवेद से संबन्ध है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में भी ॐ के एक और नाम *उद्गीथ* का अर्थ वेदत्रयी बताया गया है, केवल वहाँ क्रम विपरीत है।

संस्कृत में *ब्रह्म* शब्द के अनेक अर्थ हैं। नपुंसकलिङ्ग में वेद, तत्त्व, तप, और परमात्मा (परब्रह्म) इसके अर्थ हैं; वहीं पुल्लिङ्ग में सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और ब्राह्मण इसके अर्थ हैं। ॐ का एक नाम *त्रिब्रह्म* भी है। यहाँ *ब्रह्म* शब्द से वेद ही अभिप्रेत हैं।

*ब्रह्म* शब्द का अर्थ तप (तपस्या) भी है, अतः *त्रिब्रह्म* नाम का एक और अर्थ है *गीता* के १७वें अध्याय में वर्णित तीन प्रकार के तपः। इनमें फल की आकाङ्क्षा से रहित होकर श्रद्धा से किया गया तप सात्त्विक तप है। सत्कार, मान, पूजा आदि सांसारिक उद्देश्यों के लिये दम्भ द्वारा किया गया तप राजस है। मोह के कारण अपने-आप को पीड़ा देने वाला या दूसरे को पीड़ा देने के लिये किया गया तप तामस है। ये तीन तप *सत्त्व*, *रजस्*, और *तमस्*—इस *त्रिगुण* के अनुसार हैं और ॐ इस त्रिगुण का भी द्योतक है (११)। अथवा, ॐ *शरीर*, *वाङ्मय*, और *मानस*—इन तीन सात्त्विक तपों का द्योतक है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्; उत् + गी + थ → उद्गीथ; त्रि + ब्रह्म → त्रिब्रह्म।

अ ▶ ऋग्वेद; उ ▶ यजुर्वेद; म् ▶ सामवेद। उत् ▶ सामवेद; गी ▶ यजुर्वेद; थ ▶ ऋग्वेद। त्रि ▶ तीन; ब्रह्म ▶ १ वेद २ तपा।

उद्धरण

[उद्गीथ में] सामवेद ही उत् है, यजुर्वेद ही गी है, और ऋग्वेद ही थ है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

[ॐ] ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद हैं; अतः इसकी त्रिब्रह्म यह संज्ञा है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

प्रजापति ने वेदत्रयी से अकार, उकार, और मकार को दुहा; ऋग्वेद से अकार, यजुर्वेद से उकार, और सामवेद से मकार।

—मनुस्मृति, मनुभावावर्धचन्द्रिका टीका

ॐ—यह तीन वेद स्वरूप है।

प्रणव (ॐ) को वेदत्रयात्मक कहा गया है।

ओंकार को—अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद के समाहार को।

—विविध पुराण

(५)

ओम्

अर्थ

विष्णु के तीन क्रम (डग)।

व्याख्या

लिङ्ग पुराण और वायु पुराण के अनुसार ॐ की तीन ध्वनियों का अर्थ है भगवान् विष्णु के तीन क्रम या डग। इन तीन डगों का संबंध विष्णु के वामन अवतार से है। संस्कृत में विष्णु शब्द √विष् धातु (“व्याप्त करना”) से उत्पन्न होता है और इसका यौगिक अर्थ है “व्याप्त करने वाला”। यह विष्णु शब्द उस वामन अवतार को इङ्गित करता है जिसमें विष्णु ने सारे ब्रह्माण्ड को व्याप्त किया था। वामन अवतार का ऋग्वेद और कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में संकेत है। इस अवतार का विस्तृत वर्णन भागवत पुराण के अष्टम स्कन्ध में प्राप्त होता है। अवतार का संक्षिप्त वर्णन अधोलिखित है।

असुरों के राजा बलि ने जब स्वर्ग पर आधिपत्य स्थापित कर लिया तब देवमाता अदिति ने सहायता हेतु विष्णु की उपासना की। भगवान् विष्णु ने कश्यप और अदिति के पुत्र के रूप में वामन अवतार लिया। वामन बलि के द्वारा आयोजित अश्वमेध यज्ञ में गये और उन्होंने बलि से तीन पग (डग) भर भूमि की याचना की। बलि ने इस याचना को स्वीकार किया परन्तु दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने बलि को चेतावनी देते हुए बलि को वचन तोड़ने का आदेश दिया। बलि ने वचनदान से पीछे न हटने का निर्णय लिया। इसपर शुक्राचार्य क्रुद्ध हो गए और बलि को सब कुछ खोने का शाप देकर यज्ञशाला से चले गए। जब बलि ने भगवान् वामन से तीन डग भूमि नापने का अनुरोध किया तब वामन ने विशाल विश्वरूप धारण कर लिया। वामन ने प्रथम डग में पृथ्वी नाप ली और दूसरे में स्वर्ग। तीसरा डग रखने को जब कुछ न बचा तब बलि ने अपना सिर ही प्रस्तुत किया। वामन ने बलि के सिर पर अपना चरण रखा और उसे धन्य करके पाताल लोक भेज दिया।

वामन और बलि (महाबलि) के इस वृत्तान्त को कुछ आधुनिक लेखक दो जातियों के मध्य संघर्ष के रूप में प्रस्तुत करते हैं। सत्य तो यह है कि सनातन धर्म में बलि को खलनायक अथवा पापी के रूप में नहीं अपितु सकारात्मक रूप में देखा जाता है। वैष्णव ग्रन्थों में बलि को आत्मनिवेदन भक्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। विनयपत्रिका में तुलसीदास प्रह्लाद, विभीषण, भरत, और ब्रज की गोपियों जैसे श्रेष्ठ वैष्णवों के साथ-साथ बलि की भी प्रशंसा करते हैं।

संस्कृत में डग को क्रम भी कहते हैं। भगवान् विष्णु के क्रम बहुत विस्तृत हैं, अतः उन्हें वेदों और पुराणों में उरुक्रम (“बड़े डगों वाला”) कहा गया है। भगवान् विष्णु के समान ही उनके तीन डग (विष्णुक्रम) रक्षा करते हैं ऐसा हिन्दुओं का विश्वास है। अथर्ववेद में शत्रु से रक्षा के लिये ग्यारह

ऐसे मन्त्र प्राप्त हैं जिनके देवता विष्णुक्रम हैं।

परम्परा

पुराण।

व्युत्पत्ति

**अ + उ + म् → ओम्।**

**अ, उ, म् ► विष्णु के तीन डग (क्रम)।**

उद्घरण

ॐ [की तीन ध्वनियाँ]—ये विष्णु के क्रम हैं।

—विविध पुराण

(६)

ओम्

अर्थ

बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, और कृष्ण।

व्याख्या

वैष्णव दर्शन में बलराम (कृष्ण के अब्रज), प्रद्युम्न (कृष्ण के पुत्र), अनिरुद्ध (प्रद्युम्न के पुत्र), और कृष्ण—इन चारों को चतुर्व्यूह (“चार अवतारों का समूह”) कहा जाता है। व्यूह शब्द का प्रसिद्ध अर्थ “सैन्यबल की योजनाबद्ध रचना है”, यथा चक्रव्यूह जिसमें कौरवों ने अभिमन्यु का वध किया था। चतुर्व्यूह शब्द में व्यूह का अर्थ अवतार है। वैष्णव आगमों, पुराणों, और महाभारत में चतुर्व्यूह सिद्धान्त का वर्णन है। महाभारत के विष्णु-सहस्रनाम में विष्णु का एक नाम चतुर्व्यूह (“चार अवतार वाले”) भी है।

चैतन्य महाप्रभु के गौडीय वैष्णव संप्रदाय में आहत गोपाल तापिनी उपनिषद् के अनुसार ॐ का अर्थ चतुर्व्यूह है। इस उपनिषद् के अनुसार अकार बलराम है, उकार प्रद्युम्न है, और मकार अनिरुद्ध है—ये क्रमशः जाग्रत् (जागने की अवस्था), स्वप्न (सपने की अवस्था), और सुषुप्ति (गहरी नींद की अवस्था) में जीव के प्रतीक हैं। कृष्ण ॐ की अर्धमात्रा (आधी मात्रा) हैं, जो पूर्वोक्त तीनों अवस्थाओं से परे तुरीयावस्था की प्रतीक है।

अर्धमात्रा ॐ का चौथा भाग है और उसकी तीनों ध्वनियों से परे है। दुर्गा सप्तशती के अनुसार अर्धमात्रा का उच्चारण नहीं किया जाता। तथापि ओंकार की लिखित आकृति (ॐ) में उसे अर्धचन्द्र के रूप में दर्शाया जाता है। अर्धमात्रा को अनेक प्रकार से समझा और समझाया गया है।

गोपाल तापिनी उपनिषद् पर टीकाओं के अनुसार अर्धमात्रा संपूर्ण ओंकार का प्रतिनिधित्व करती है। तात्पर्य यह है कि चतुर्व्यूह के साथ-साथ ॐ का अर्थ गौडीय वैष्णव संप्रदाय के परम दैवत कृष्ण भी समझना चाहिये।

परम्परा

उपनिषद्, वैष्णव मता

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् + अर्धमात्रा → ओम्

अ ► बलराम (कृष्ण के अब्रज); उ ► प्रद्युम्न (कृष्ण के पुत्र); म् ► अनिरुद्ध (प्रद्युम्न के पुत्र);

**अर्धमात्रा ► कृष्ण।**

उद्धरण

रोहिणी के पुत्र बलराम अकार अक्षर से संभूत (उत्पन्न) हैं और विश्व अथवा जाग्रत् अवस्था के विभु हैं। उकार अक्षर से उत्पन्न प्रद्युम्न तैजस स्वरूप (स्वप्न अवस्था के विभु) हैं। अनिरुद्ध मकार अक्षर से संभूत हैं और प्राज्ञ स्वरूप (सुषुप्ति अवस्था के विभु) हैं। कृष्ण अर्धमात्रा स्वरूप हैं, उनमें यह विश्व प्रतिष्ठित है।

—गोपाल तापिनी उपनिषद्, उसपर टीका

(७)

ओम्

अर्थ

विष्णु, लक्ष्मी, और पच्चीसवा (जीव)।

व्याख्या

ॐ का यह अर्थ पद्म पुराण के अनुसार है। इसमें सांख्य और वैष्णव दर्शनों का समावेश है। सांख्य हिन्दुओं के छः आस्तिक दर्शनों में से एक है और योग दर्शन से इसकी अत्यधिक निकटता है। सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्त्व हैं। पाँच स्थूल भूत (महाभूत), पाँच सूक्ष्म भूत (तन्मात्राएँ), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, अहंकार, और बुद्धि—ये तेईस व्यक्त तत्त्व कहलाते हैं। अव्यक्त प्रकृति चौबीसवा तत्त्व है और पच्चीसवा तत्त्व पुरुष अर्थात् चेतन जीव है। पद्म पुराण में दिये गए ॐ के अर्थ में पच्चीसवा का अभिप्राय इसी पुरुष अर्थात् जीव से है।

ॐ के इस अर्थ के अनुसार अकार विष्णु है, उकार विष्णुपत्नी श्री अथवा लक्ष्मी है, और मकार इन दोनों का दास चेतन जीव है। रामानुजाचार्य के श्रीवैष्णव दर्शन के अनुसार भी जीव भगवान् लक्ष्मीनारायण का दास है। इस दर्शन में लक्ष्मी और नारायण परम देवता हैं और प्रपत्ति अर्थात् भगवान् की शरण में जाने पर विशेष महत्त्व दिया गया है। श्रीवैष्णवों के अनुसार सगुण अर्थात् सभी कल्याणमय गुणों से युक्त और निर्गुण अर्थात् सभी हेय (त्याज्य) गुणों से रहित महाविष्णु ही परब्रह्म हैं।

ब्रह्माण्ड पुराण में षड्विध (छः विधाओं वाली) शरणागति का वर्णन है। इसके छः प्रकार हैं—

- (१) भगवान् के प्रति अनुकूलता का संकल्प,
- (२) भगवान् के प्रति प्रतिकूलता का वर्जन (त्याग),
- (३) भगवान् रक्षा करेंगे ऐसा विश्वास,
- (४) भगवान् का रक्षक के रूप में चयन (गोप्तृत्ववरण),
- (५) कार्पण्य अर्थात् दीनता, और
- (६) आत्म-निक्षेप अर्थात् स्व-समर्पण।

वैष्णव आगमों में भी कुछ भेदों के साथ इन छः अङ्गों का वर्णन है। रामानुज के श्रीवैष्णव संप्रदाय और रामानन्द के श्रीसंप्रदाय में षड्विध शरणागति का बहुत आदर है।



ॐ का यह अर्थ भक्तिमार्ग में आस्था रखने वालों के लिये चिन्तामणि के समान है। जिस प्रकार गीता का दर्शन कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, और ज्ञानमार्ग—इन तीनों के पथिकों के लिये उपयोगी है, उसी प्रकार विभिन्न हिन्दू ग्रन्थों में प्रतिपादित ॐ के अनेक अर्थ भी शैवमार्ग, वैष्णवमार्ग, शाक्तमार्ग, योगमार्ग, आदि अनेक मार्गों के पथिकों के लिये उपयोगी हैं। ॐ का सम्मान बौद्ध, जैन, और सिक्ख धर्मों में भी है, अतः ॐ सभी प्रमुख भारतीय धर्मों को जोड़ने वाला **सेतु** (८४) है।

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्

अ ► विष्णु; उ ► लक्ष्मी; म् ► चेतन जीव।

उद्घरण

अकार से विष्णु उक्त हैं और उकार से श्री (लक्ष्मी) उक्त हैं। मकार तो इन दोनों का दास पच्चीसवा (जीव) कहा गया है।

—पद्म पुराण

(८)

ओम्

अर्थ

प्रारम्भ, उपक्रम

व्याख्या

विश्वकोश एवं मेदिनीकोश—संस्कृत के इन दो मध्यकालीन कोशों के अनुसार ॐ शब्द का प्रयोग उपक्रम (प्रारम्भ) में होता है। ॐ के इस अर्थ का मूल वैदिक एवं पौराणिक आख्यानों में है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ब्रह्मा ने लोकों, देवताओं, वेदों, पञ्चतत्त्वों, दिशाओं, ऋतुओं, शब्दों, जीवों, और इन्द्रियों सहित सारे ब्रह्माण्ड की रचना ॐ की मात्राओं से की। नारद पुराण के वचन के अनुसार सबसे प्रथम ॐ और अथ शब्द ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके बाहर निकले थे।

ॐ का यह अर्थ कई वैदिक, आध्यात्मिक, और नैतिक क्रियाओं में दृष्टिगोचर होता है। वैदिक मन्त्रों का उच्चारण ॐ से प्रारम्भ होता है। इस प्रयोग में ॐ का दीर्घ (दो मात्राओं वाला) नहीं अपितु प्लुत (तीन मात्राओं वाला) उच्चारण होता है। यथा ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का प्रारम्भ अग्निमीले पुरोहितम् (“मैं पुरोहित अग्नि की स्तुति करता हूँ”) से होता है, और उसका उच्चारण ओ३म्, अग्निमीले पुरोहितम् ऐसे होता है। वेदों से अतिरिक्त पवित्र वाणी के प्रारम्भ में भी बहुधा ॐ का उच्चारण होता है। ॐ नमः शिवाय और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सहस्र अनेक हिन्दू मन्त्रों के प्रारम्भ में, जैनधर्म के णमोकार मन्त्र (ॐ णमो अरिहंताणं ...) के प्रारम्भ में, और तिब्बती बौद्ध धर्म के ॐ मणिपद्मे हुम् मन्त्र के प्रारम्भ में ॐ का उच्चारण होता है। सिक्खों के ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहिब का प्रारम्भ इक्क ओअंकार से हुआ है, यहाँ ओअंकार ॐ अथवा ओंकार (२९) का रूप है। गीता के अनुसार यज्ञ, ज्ञान, और तपस्या आदि महान् कार्यों का प्रारम्भ ॐ के उच्चारण के पश्चात् ही होता है।

लौकिक संस्कृति में भी ॐ उदार या शुभ कार्यों के प्रारम्भ का द्योतक है। रघुवंश महाकाव्य में कालिदास प्रथम राजा मनु की उपमा ॐ से देते हैं। महावीर-चरित नाटक में भवभूति ॐ के रूपक से श्रीराम द्वारा ताटका के वध को संपूर्ण राक्षसों के संहार का प्रारम्भ कहते हैं।

परम्परा

स्मृति, गीता, व्याकरण, काव्य, नाटक, कोश

उद्धरण

ॐ उपक्रम में [प्रयुक्त होता है]।

—विविध कोश

ॐ से प्रारम्भ न हो तो वैदिक विद्या का श्रवण होता है, ॐ से अन्त न हो तो विद्या विशीर्ण होती है।

—मनुस्मृति

अतः वेदपाठियों के लिये विधि द्वारा उक्त यज्ञ, दान, और तप क्रियाओं का प्रारम्भ ॐ ऐसा बोलने के पश्चात् होता है।

—गीता

अभ्यादान (वैदिक मन्त्र के प्रारम्भ) में ॐ पद को प्लुत होता है।

—अष्टाध्यायी

जिनका प्रारम्भ ॐ से है आप ऐसी वेदवाणी के स्रोत हैं।

—देवता ब्रह्मा को, कुमारसंभव

मनु राजाओं में प्रथम थे जैसे वेदों में **प्रणव** [प्रथम शब्द है]।

—रघुवंश

विश्वामित्र [स्वगत]: 'निश्चित ही यह सकल राक्षसों के संहार रूपी वेदाध्ययन के लिये **ओंकार** (प्रारम्भ) है'

—महावीरचरित

(९)

ओम्

अर्थ

स्वीकृतिसूचक उक्ति।

व्याख्या

किसी अनुरोध या आज्ञा के उत्तर के रूप में ॐ एक स्वीकृतिसूचक उक्ति है। यह “ऐसा ही हो” (तथाऽस्तु) या “जैसी आपकी आज्ञा” (यथाऽऽज्ञापयसि त्वम्) का समानार्थक है। ॐ का यह प्राचीनतम अर्थ उपनिषदों और कोशों द्वारा प्रमाणित है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता में ॐ शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रथम प्रयोग द्वितीय अध्याय में है, जहाँ पारम्परिक भाष्यों के अनुसार यह स्वीकृतिवाचक है। अन्य दोनों प्रयोगों में इसका अर्थ परब्रह्म है।

स्वीकृति के अर्थ में ॐ का प्रयोग पौराणिक और काव्य साहित्य में भी प्राप्त होता है। भागवत पुराण में वर्णन आता है कि जब इन्द्र ने बदरीनाथ (बदरिकाश्रम) में नर और नारायण को तपस्या करते देखा तो उनको मोहित करने के लिए कामदेव और अप्सराओं को भेजा। अप्सराओं से मोहित होना तो दूर, नारायण ऋषि ने अपनी योगशक्ति से लक्ष्मी के सामान अनेक सुन्दरियों को रच दिया। फिर उन्होंने कामदेव और उसके साथियों को किसी भी एक सुन्दरी का स्वर्ण के लिये चयन करने का आदेश दिया। कामदेव और उसके साथियों ने ‘ॐ’ कहा और वे उर्वशी को चुनकर इन्द्र के पास लौट गए। ॐ का स्वीकृति के रूप में एक अन्य प्रयोग भी इन्द्र से संबद्ध है। माघ के महाकाव्य शिशुपालवध के प्रारम्भ में नारद इन्द्र का सन्देश कृष्ण तक पहुँचाकर उनसे शिशुपाल के आतङ्क को समाप्त करने की प्रार्थना करते हैं। नारद की प्रार्थना सुनकर कृष्ण ‘ॐ’ केवल इतना उत्तर देते हैं।

जहाँ ॐ स्वीकृति का वाचक है वहीं न शब्द अस्वीकृति का वाचक है। ऐतरेय आरण्यक में ॐ की तुलना सत्य से और न की अनृत से की गयी है। इस प्रसंग में आरण्यक में दान के विषय में एक व्यावहारिक उपदेश इस प्रकार है। जो ॐ कहकर दान करता है वह यशस्वी और कल्याणमयी कीर्ति वाला होता है। जो न कहकर दान नहीं देता वह विनष्ट होता है (नरक को प्राप्त करता है)। यदि व्यक्ति सब कुछ दान कर दे तो उसके पास अपनी आवश्यकता के लिये कुछ नहीं रहता। यदि व्यक्ति कुछ भी दान नहीं करता तो उसके फलस्वरूप प्राप्त अपकीर्ति उसे मृतप्राय कर देती है। अतः व्यक्ति को कभी-कभी दान देना चाहिये और कभी-कभी नहीं भी देना चाहिये। इस प्रकार का आचरण करके व्यक्ति संतुलन के द्वारा समृद्धि को प्राप्त करता है।

ऐतरेय आरण्यक का यह उपदेश अति सर्वत्र वर्जयेत् इस नीतिवाक्य में प्रतिबिम्बित है। अर्थ यह है कि “सभी स्थानों पर अति से बचना चाहिये”।

परम्परा

उपनिषद्, पुराण, टीकाएँ, काव्य, कोशा

उद्धरण

ॐ—यह निश्चय ही स्वीकृति है।

—तैत्तिरीय उपनिषद्

‘ॐ’ (‘जैसी आपकी आज्ञा’) कहकर देवताओं के सेवकों ने नारायण की आज्ञा स्वीकार की।

—भागवत पुराण

ॐ का अर्थ अभ्युपगम/अङ्गीकार (स्वीकृति) है।

—शुक्ल यजुर्वेद संहिता पर टीकाएँ

नारद का अनुरोध सुनने के पश्चात् कृष्ण ने कहा, ‘ॐ’ (‘ऐसा ही हो’)।

—शिशुपालवध

ॐ अभ्युपगम (स्वीकृति) के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

—मोदिनीकोश

(१०)

ओम्

अर्थ

अनुमतिसूचक, अनुज्ञा

व्याख्या

अनुमति प्राप्त करने के हेतु कोई प्रश्न पूछा जाये तो संस्कृत में ॐ इस उतर का अर्थ है “आज्ञा है” यह अर्थ उपनिषदों और संस्कृत कोशों द्वारा प्रमाणित है। वैदिक अध्यापन एवं यज्ञों के संदर्भ में भी ॐ का इस अर्थ में प्रयोग मिलता है।

गुरु परम्परा से प्राप्त वेदों की विभिन्न संहिताओं को शाखा (“डाली”) कहते हैं। एक शाखाविशेष के वर्णविज्ञान और उच्चारण संबन्धी नियमों के संकलन करने वाले ग्रन्थों को प्रातिशाख्य कहते हैं। प्रातिशाख्य का अर्थ है “प्रत्येक शाखा में उत्पन्न”। ऋग्वेद के प्रातिशाख्य के अनुसार वेदाध्ययन करने वाला विद्यार्थी शङ्का या प्रश्न करने के लिये ‘भोः’ कहकर आचार्य की अनुमति माँगता है। उतर में आचार्य ‘ॐ भोः’ कहकर अनुमति प्रदान करते हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार यज्ञ में आहुति डालने की अनुमति भी ॐ कहकर प्रदान की जाती है।

संस्कृत में अनुमति के लिये दो शब्द हैं—अनुमति और अनुज्ञा। वास्तव में ॐ का अर्थ अनुज्ञा है। अनुज्ञा शब्द किसी नैतिक अनुशासन या आध्यात्मिक विद्यादान के संदर्भ में प्रयुक्त होता है, जबकि अनुमति शब्द का अर्थ है साधारण अनुमति। वेदान्त दर्शन के मौलिक ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र के अनुसार अनुज्ञा शब्द शास्त्रविहित कार्यों को इङ्गित करता है। इसी से संबद्ध एक और शब्द है अनुज्ञात। महाभारत के याज्ञवल्क्य-जनक-संवाद में अनुज्ञात शब्द का प्रयोग याज्ञवल्क्य द्वारा प्रदत्त ज्ञान के लिये हुआ है। बौद्ध तन्त्र में अनुज्ञा शब्द का प्रयोग एक गुरु द्वारा देवताविशेष के आवाहन हेतु दी गयी अनुमति के लिये और मन्त्रप्रयोग आदि आध्यात्मिक क्रियाओं के अनुमोदन संस्कार के लिये होता है। तात्पर्य यह है कि अनुज्ञा के रूप में ॐ द्वारा प्रदान की गयी अनुमति कोई साधारण अनुमति नहीं है अपितु शास्त्र अथवा गुरु द्वारा उपदिष्ट कर्म, ज्ञान, या आध्यात्मिक क्रिया से संबद्ध विशेष अनुमति है।

परम्परा

वैदिक वर्णविज्ञान, उपनिषद्, कोशा

उद्धरण

निर्वचन के लिये 'भोः' ऐसे अनुरोध हो, और ऐसा कहने पर 'ॐ भोः' ऐसी अभ्यनुज्ञा (अनुमति) हो।

—ऋग्वेद प्रातिशाख्य

'ॐ' ऐसा कहकर अग्निहोत्र की अनुमति दी जाती है।

—तैत्तिरीय उपनिषद्

निश्चित रूप से ॐ यह अनुज्ञा प्रदान करने वाला अक्षर है। यदि कोई कुछ करने की अनुमति देता है तो 'ॐ' इतना ही कहता है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

ॐ अनुमति [के अर्थ] में कहा गया है।

—विश्वकोश

ॐ अनुज्ञा के अर्थ में [प्रयुक्त होता है]—'अग्नि में आहुतिदान करूँ? 'ॐ, वैसा करो'

—अव्यय कोश

(११)

## ओम्, त्रिगुण

अर्थ

तीन गुण—सत्त्व, रजस्, तमस्

व्याख्या

भारतीय दर्शन में तीन मूलभूत गुण माने गये हैं—सत्त्व (शुद्धता का गुण), रजस् (राग का गुण), और तमस् (अज्ञान का गुण)। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति और पुराणों के अनुसार ॐ का अर्थ तीन गुण हैं—अकार सत्त्व का, उकार रजस् का, और मकार तमस् का वाचक है। गीता में इन तीन गुणों के अनुसार श्रद्धा, उपासना, आहार, यज्ञ, तप, दान, त्याग, ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति, और सुख के तीन-तीन भेद वर्णित हैं। कृष्ण का कथन है कि तीनों गुण सभी को प्रभावित करते हैं और कोई भी एक गुण दूसरे दो गुणों पर हावी होता है। तात्पर्य यह है कि एक समय पर तीनों में से एक कोई एक गुण दूसरे दो गुणों पर हावी रहता है।

सत्त्व, रजस्, और तमस् क्रमशः उत्कृष्ट, मध्यम, और निकृष्ट गुण हैं ऐसी अवधारणा मिथ्या है। सत्य तो यह है कि गीता में कृष्ण के वचन के अनुसार तीनों गुण संपूर्ण जगत् को मोहित करते हैं और तीनों बाँधते हैं—सत्त्व सुख के संग से, रजस् कर्म के संग से, और तमस् प्रमाद-आलस्य-निद्रा से। वस्तुतः √गुण धातु से निष्पन्न गुण शब्द का एक अर्थ रस्सी भी है। कृष्ण कहते हैं कि जो गुणों से ऊपर उठकर गुणातीत हो जाता है वह जन्म और मृत्यु से मुक्त होकर अमृत को प्राप्त करता है। ॐ की तीन ध्वनियाँ तीन गुण हैं, पर ॐ स्वयं तीनों गुणों से परे अथवा गुणातीत अमृत है। इसी कारण से ॐ को रस भी कहते हैं; छान्दोग्य उपनिषद् में इसे सभी रसों में श्रेष्ठ रस कहा गया है (७८)।

युगों की प्रतीकात्मक व्याख्या तीन गुणों से संबन्धित है। भागवत पुराण के अनुसार जैसे गुणों का प्रभाव घटता-बढ़ता है वैसे जीवों में चारों युगों का अस्तित्व रहता है। जब मन, बुद्धि, और इन्द्रियों पर सत्त्व गुण का प्रभाव सर्वाधिक होता है तब सत्य युग का अस्तित्व होता है। रजस् का प्रभाव अधिक होने पर त्रेता युग, रजस् और तमस् का प्रभाव अधिक होने पर द्वापर युग, और तमस् का प्रभाव अधिक होने पर कलियुग का अस्तित्व रहता है। पुराणों के अनुसार सात्त्विक कल्पों में विष्णु का माहात्म्य अधिक होता है, राजस कल्पों में ब्रह्मा का, और तामस कल्पों में शिव का माहात्म्य अधिक होता है। चूँकि ॐ त्रिगुण से परे है, ॐ का माहात्म्य सभी कल्पों में अधिक ही होता है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ॐ सभी परिस्थितियों और सभी कालों के लिए उपयुक्त मन्त्र है, फिर भले कोई भी गुण जीव पर हावी क्यों न हो।

कपिल मुनि के अनुयायी ॐ को त्रिगुण इसलिये कहते हैं क्योंकि यह व्यञ्जन (सगुण), निर्गुण (गुणरहित), और सर्व (सगुण और निर्गुण दोनों का योग) है।



परम्परा

स्मृति, पुराणा

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्; त्रि + गुण → त्रिगुणा

अ ► सत्त्व (शुद्धता); उ ► रजस् (राग); म् ► तमस् (अज्ञान)। त्रि ► तीन; गुण ► गुण।

उद्धरण

ॐ [की तीन ध्वनियाँ] सत्त्व, रजस्, और तमस् हैं, इसलिये इसे **त्रिगुण** कहते हैं।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

अकार, उकार, और मकार—ये तीन ध्वनियाँ हैं। ये सत्त्व, रजस्, और तमस् की वाचक तीन मात्राएँ हैं।

—विविध पुराण

(१२)

ओम्

अर्थ

अन्तः

व्याख्या

प्रारम्भ (८) के साथ-साथ ॐ का अर्थ अन्त भी है। मध्यकालीन और आधुनिक संस्कृत कोशों में यह अर्थ उल्लिखित है। सारा जगत् ॐ से उत्पन्न है और ॐ में ही लीन होता है ऐसी मान्यता है। इसी कारण से ॐ को **प्रलय** (७६) भी कहा जाता है। प्रलय का अर्थ है लीन होने की क्रिया या लीन होने का आधार।

ॐ का यह अर्थ कई हिन्दू ग्रन्थों, मन्त्रों, और धार्मिक व सांस्कृतिक कृत्यों में दृष्टिगोचर होता है। शुक्ल यजुर्वेद की *वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता* का अन्त “ॐ यह आकाश [के समान] ब्रह्म है” इस उद्घोष से होता है। संस्कृत भाष्यों के अनुसार इसका अर्थ है कि ॐ मन्त्र को जपते हुए आकाशव्यापी ब्रह्म का ध्यान करना चाहिये। *कूर्म पुराण* में महर्षि व्यास और अन्य मुनियों के संवाद *व्यास गीता* में व्यास कहते हैं कि वेदाध्ययन के अन्त में प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना चाहिये। *मनुस्मृति* के अनुसार यदि वेदाध्ययन के अन्त में ॐ नहीं कहा जाए तो अध्ययन विशीर्ण हो जाता है। जब वैदिक मन्त्रों का यज्ञ में प्रयोग होता है तो अन्तिम वर्ण (अन्तिम स्वर और उसके परवर्ती व्यञ्जन, यदि हों तो) के स्थान पर प्लुत और उदात्त ॐ का उच्चारण होता है। यथा ऋग्वेद का मन्त्र है

अग्निः ... अपां रेतांसि जिन्वति,

जिसका अर्थ है “अग्नि जल के जीवों को आनन्दित करता है” यज्ञ में इस मन्त्र का उच्चारण

अग्निः ... अपां रेतांसि जिन्वतोम्,

ऐसे होता है, जिसमें अन्तिम वर्ण के स्थान पर ॐ आदेश होता है। ॐ कुछ मन्त्रों के अन्त में भी आता है। यथा सन्ध्यावन्दन के एक मन्त्र का अन्त **भूर्भुवः स्वरोम्** (भूर्भुवः स्वः + ॐ) ऐसे होता है। इसके ठीक विपरीत गायत्री मन्त्र का प्रारम्भ ॐ **भूर्भुवः स्वः** ऐसे होता है।

आधुनिक युग में भी ॐ का प्रयोग कई क्रियाओं के अन्त में होता है। अनेक प्रार्थना सभाओं का अन्त शान्ति मन्त्र के लघु स्वरूप ॐ **शान्तिः शान्तिः शान्तिः** से होता है। कुछ आधुनिक ध्यान पद्धतियों में ध्यान सत्र का अन्त ॐ के उच्चारण से होता है। बहुधा योग की कक्षाओं का अन्त श्वासन से होता है, और प्रायः श्वासन के पश्चात् ॐ का उच्चारण किया जाता है।

परम्परा

स्मृति, पुराण, व्याकरण, कोश।

उद्धरण

यदि ॐ से प्रारम्भ न किया जाये, तो वैदिक अध्ययन झुत हो जाता है। यदि ॐ से अन्त न हो तो वह विशीर्ण हो जाता है।

—मनुस्मृति

और अन्त में भी ब्राह्मण को विधिवत् ॐ का उच्चारण करना चाहिये।

—कूर्म पुराण

यज्ञक्रिया में मन्त्र के अन्त्य शब्द के अन्तिम वर्ण के स्थान पर **प्रणव** (ॐ) आदेश होता है।

—अष्टाध्यायी

ॐ का अर्थ है अन्ता यथा ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् (सुवरोम्) [इस मन्त्र में]।

—निपात-अव्यय-उपसर्ग-वृत्ति,  
अव्यय कोश

(१३)

ओम्

अर्थ

तूष्णीम्भाव, मौन, निःशब्दता।

व्याख्या

मध्यकालीन और आधुनिक संस्कृत कोशों के अनुसार मौन अथवा निःशब्दता भी ॐ का एक अर्थ है। आज के कुछ पारम्परिक वेदज्ञों का मानना है कि इस अर्थ का मूल प्राजापत्य वैदिक मन्त्रों के मौन रूप से उच्चारण करने की प्रथा में है। प्राजापति को समर्पित मन्त्रों का केवल मन में उच्चारण होता है, और उनको प्रारम्भ और अन्त करने वाले ॐ का भी मानस उच्चारण होता है। जब ॐ का मानस उच्चारण होता है तो इसे कद्द् ॐ कहते हैं। कद्द् का अर्थ है क (अर्थात् प्राजापति) शब्द वाला मन्त्र।

एक ही ॐ को स्वर (४७) और शब्द (८७) भी कहा जाये, और उसी ॐ का अर्थ निःशब्दता भी हो, ऐसा कैसे संभव है? इसका उत्तर यह है कि हिन्दू धर्म में परब्रह्म को सगुण और निर्गुण दोनों माना जाता है। क्योंकि ॐ परब्रह्म ही है (१९), अतः स्वाभाविक है कि उसके सगुणपरक और निर्गुणपरक दोनों नाम होंगे। शब्द और स्वर आदि नाम वाणी द्वारा उच्चारित सगुण ॐ से सम्बद्ध हैं। निःशब्दता ॐ का यह अर्थ निर्गुण ॐ से सम्बद्ध है। शिव पुराण के वचन के अनुसार दीर्घ सूक्ष्म ॐ का उच्चारण नहीं होता अपितु वह केवल योगियों के हृदय में निवास करता है।

अनेक पुराणों के अनुसार जप के तीन भेद हैं—वाचिक जप (सुनाई देने वाली वाणी द्वारा जप), उपांशु जप (बहुत धीमे स्वर में जप), और मानस जप (मन-ही-मन जप)। शिव पुराण के अनुसार समाधि की अवस्था में ॐ का मानस जप होता है, जबकि इसका उपांशु जप किसी भी समय किया जा सकता है। जब किसी वैदिक मन्त्र के प्रारम्भ या अन्त में अथवा उपांशु रूप में ॐ का उच्चारण होता है, तब वह सगुण होता है। जब उसी ॐ का मानस उच्चारण होता है तब वह निर्गुण मौन होता है।

गीता में अर्जुन प्रश्न करते हैं कि सगुण कृष्ण और निर्गुण अव्यक्त अक्षर के उपासकों में कौन श्रेष्ठ योगी हैं। कृष्ण कहते हैं कि सगुण के उपासक ही उनके लिये श्रेष्ठ योगी हैं और यद्यपि निर्गुण उपासक भी उन्हीं को प्राप्त करते हैं तो भी उन्हें (निर्गुण उपासकों को) वलेश अधिक होता है। रामचरितमानस में तुलसीदास कहते हैं कि जल और उपल (ओले) की भाँति सगुण राम और निर्गुण ब्रह्म एक ही हैं। ॐ के विषय में भी ऐसा समझा जा सकता है। उच्चारित सगुण ॐ और अनुच्चारित ध्यानगम्य कद्द् ॐ एक ही हैं और वे साधक को एक ही पद तक पहुँचाते हैं, किन्तु मानस जप द्वारा निर्गुण ॐ की उपासना में वलेश अधिक होता है।

परम्परा

कोश

उद्धरण

ॐ [का अर्थ] निःशब्दता है।

—निपात-अव्यय-उपसर्ग-वृत्ति

ॐ [का अर्थ] निःशब्दता है—‘कट्ठद् ॐ करो’।

—अव्यय कोश

(१४)

## ओम्, त्रिमात्र

अर्थ

तीन मात्रा [से युक्त]।

व्याख्या

वैदिक शिक्षा ग्रन्थों और पुराणों में ॐ को **त्रिमात्र** (“तीन मात्राओं वाला”) कहा गया है। मात्रा स्वरशास्त्र में काल की इकाई का नाम है। एक प्रसिद्ध व्याख्या के अनुसार बाएँ हाथ को बाएँ घुटने पर फेरने में जितना समय लगता है वह एक मात्रा का काल होता है। ह्रस्व स्वर की एक मात्रा होती है और दीर्घ स्वर की दो। वैदिक मन्त्र के प्रारम्भ में जब ॐ का उच्चारण होता है तब ॐ की तीन मात्राएँ होती हैं (८)। इसी कारण से ॐ को **त्रिमात्र** कहा जाता है और कुछ परम्पराओं में (यथा आर्यसमाजियों में) ॐ को ओ३म् ऐसे लिखा जाता है।

पुराणों के अनुसार ॐ की प्रथम मात्रा का नाम *विद्युती* (“कान्ति से युक्त”), द्वितीय मात्रा का नाम *तामसी* (“अन्धकार से युक्त”), और अक्षर ब्रह्म तक ले जाने वाली तृतीय मात्रा का नाम *निर्गुणी* (“गुण से रहित”) या *गान्धारी* (“शास्त्रीय संगीत के तृतीय स्वर गान्धार से उत्पन्न”) है।

यदि किसी साधक या योग के अभ्यासकर्ता को ॐ की तीन मात्राओं का ज्ञान न हो और वह ॐ पर तीन मात्राओं से अल्प समय के लिये ध्यान करे तो क्या होगा? *प्रश्न उपनिषद्* के अनुसार हानि तो कोई नहीं होगी। उपनिषद् का कथन है कि जो ॐ पर एक मात्रा के लिये ध्यान करता है वह संवेदित होता है और तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा आदि गुणों से युक्त होकर मनुष्यलोक में पुनः आता है। जो द्विमात्र ॐ का दो मात्राओं के लिये ध्यान करता है वह चन्द्रलोक में विभूतियों का अनुभव करके पुनः भूमि पर आता है। और जो त्रिमात्र ॐ का तीन मात्राओं के लिये ध्यान करता है वह पापों से विनिर्मुक्त होकर ब्रह्मलोक पहुँच जाता है। उपनिषद् आगे कहती है कि ॐ की तीन मात्राएँ मृत्यु से युक्त हैं परन्तु ये जब एक-दूसरे से मिलकर प्रयुक्त होती हैं तो साधक भयरहित अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

स्मृति ग्रन्थों में ॐ की तीन मात्राओं को *व्यक्त* (जगत्), *अव्यक्त* (प्रकृति), और *सूक्ष्म* (जीव) कहा गया है। सांख्य दर्शन में ये तत्त्वों के तीन भेद हैं। ॐ की तीन मात्राओं को *अधिभूत* (नस्वर भौतिक जगत्), *अधिदेव* (दिव्य लोक), और *अध्यात्म* (आत्मा) भी कहा गया है—*गीता* के आठवे अध्याय में इन तीनों की चर्चा है। अन्ततः, *माण्डूक्य उपनिषद्* में अकार, उकार, और मकार को ही ॐ की तीन मात्राएँ कहा गया है। उपनिषद् के अनुसार चौथी मात्रा स्वयं ॐ है, जो कि *अमात्र* (मात्रा या मान से परे) है।

परम्परा

वैदिक वर्णविज्ञान, उपनिषद्, पुराण।

व्युत्पत्ति

त्रि + मात्रा → त्रिमात्रा

त्रि ► तीन; **मात्रा** ► मात्रा (उच्चारण काल का परिमाण विशेष)।

उद्धरण

ॐ **त्रिमात्र** है।

—ऋग्वेद प्रातिशाख्य, उवट का भाष्य

ॐ को **त्रिमात्र** जानना चाहिये, यहाँ व्यञ्जन तो शिव ही हैं।

—लिङ्ग पुराण

अकार अक्षर को उकार के सहित कहा गया है ऐसा जानना चाहिये, और दोनों मकार के सहित ओंकार हैं, अतः ॐ का नाम **त्रिमात्र** है।

—लिङ्ग पुराण

(१५)

ओम्

अर्थ

१ व्यापक २ प्राप्तकर्ता ३ प्राप्त करने का साधन

व्याख्या

अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में ॐ के स्वरूप पर एक विस्तृत चर्चा है जिसमें ॐ के विषय में छत्तीस प्रश्न पूछे गये हैं। इनमें से पहला प्रश्न है—“ॐ के विषय में पूछते हैं, इसकी धातु क्या है?” यह प्रश्न इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि नैरुक्तों (निरुक्त के ज्ञाताओं) और शाकटायन आदि वैयाकरणों का मत है कि सभी शब्द धातुओं से उत्पन्न होते हैं। यद्यपि कुछ प्राचीन वैयाकरण यह नहीं मानते फिर भी संस्कृत साहित्य की अधिकांश व्युत्पत्तियों में शब्द धातुओं से ही सिद्ध किये जाते हैं।

गोपथ ब्राह्मण में इस प्रश्न का उत्तर यँ दिया है—“√आप् धातु है, कुछ के अनुसार √अव् धातु है। रूप की समानता से अर्थ की समानता अधिक निकट होती है। इसलिये √आप् से ओंकार है। सबको व्याप्त (या प्राप्त) करता है यह इसका अर्थ है।” √आप् धातु के दो मुख्य अर्थ हैं—व्याप्त करना और पाना (प्राप्त करना)। दूसरी उल्लिखित धातु √अव् के उन्नीस अर्थ हैं जो संस्कृत की किसी भी धातु के लिये सर्वाधिक हैं (देखें ओम्, पृ. १०९)।

व्यापक होने के कारण ॐ देश, काल, और वस्तु से अपरिच्छिन्न है, अर्थात् इनकी सीमाओं से परे है। इसका प्रमाण अनन्त (५३), सर्वव्यापी (८२), त्रैकाल्य (९०), आदि नाम भी हैं। गुरुवन्दना में एक प्रसिद्ध श्लोक में ॐ की इस सर्वव्यापकता को इङ्गित किया गया है—व्याप्तं येन चराचरं तत्पदम्। पद का अर्थ तत्त्व (वस्तु) और शब्द दोनों हैं, अतः तत्पदम् का तात्पर्य ब्रह्म और ॐ दोनों से है।

√आप् धातु का दूसरा अर्थ “पाना” या “प्राप्त करना” है, अतः ॐ का अर्थ प्राप्तकर्ता या प्राप्ति का साधन भी है। परब्रह्म के विषय में कठ और मुण्डक उपनिषदों में कहा गया है कि यह प्रवचन, मेधा, या श्रुत (विद्या) से प्राप्य नहीं है, पर उसी के द्वारा लभ्य है जिसका वरण वह स्वयं करता है। ॐ के विषय में भी ऐसा समझा जा सकता है, क्योंकि ॐ परब्रह्म का ही नाम है (देखें ओम्, पृ. १९) और वाचक (नाम) और वाच्य (नामी) में अभेद है। जिसे ॐ प्राप्त करता है, वही ॐ को प्राप्त करता है। इस प्रकार ॐ प्राप्तकर्ता है।

ॐ को प्राप्ति का साधन भी समझा जा सकता है। तैत्तिरीय उपनिषद् में ॐ को ब्रह्मप्राप्ति का साधन बताते हुए कहा गया है—“ॐ इस प्रकार प्रकृष्ट रूप से उत्च्चारण करते हुए ब्राह्मण कहता है, ‘मैं ब्रह्म को प्राप्त करूँ,’ और निश्चित रूप से ब्रह्म को प्राप्त करता है।” ॐ का एक नाम तार भी है, जिसका अर्थ भी प्राप्ति का साधन है (देखें पृ. ८९)।



परम्परा

वेद, टीकाएँ

व्युत्पत्ति

√आप् + डोम् → ओम्

√आप् ► १ व्याप्त करना २ प्राप्त करना, पाना; डोम् ► कर्ता या करण के अर्थ में ऊह्य अविहित उणादि प्रत्यय।

उद्धरण

ॐ के विषय में पूछते हैं, इसकी धातु क्या है? ... इसलिये √आप् से ओंकार है। सबको व्याप्त (या प्राप्त) करता है यह इसका अर्थ है।

—गोपथ ब्राह्मण

अवति (√अव् धातु) या आप्नोति (√आप् धातु) से ओंकार है।

—शुक्ल यजुर्वेद पर भाष्य

(१६)

ओम्

अर्थ

हटाने, अपाकृति, या वारण के लिये उक्ति।

व्याख्या

मैदिनी कोश के अनुसार ॐ शब्द का प्रयोग अपाकृति (वारण या हटाने) के अर्थ में होता है। यहाँ पापों की अपाकृति अभिप्रेत है। वेदों में वर्णन आता है कि ॐ के उच्चारण से पाप का निवारण होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार यजुर्वेद के मन्त्रों का उच्चारण करने वाला अध्वर्यु दिव्य शब्द ॐ और मानुष शब्द तथा के द्वारा यजमान को लगे पाप का वारण करता है। जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार सामवेद के विशिष्ट मन्त्रों का सत्य अक्षर ॐ के साथ उच्चारण करने से पाप का नाश होता है।

अपाकृति का अर्थ दुःख और ऋण का निवारण भी होता है। ऋग्वेद में यह शब्द दुःख के संदर्भ में प्रयुक्त हुआ है—“हे आदित्य, आप दुःखों की अपाकृति करना जानते हो।” मनुस्मृति, रामायण, और पुराणों में देवता, गुरु, और पितरों के ऋण की अपाकृति (अर्थात् इन ऋणों से अनृण या उऋण होने) की चर्चा है।

विष्णु और शिव के क्रमशः हरि और हर नामों में ॐ का यह अर्थ प्रतिबिम्बित होता है। दोनों नामों का अर्थ है “हरण करने वाला”; और यहाँ पापों का हरण अभिप्रेत है।

परम्परा

कोश।

उद्धरण

ॐ [का प्रयोग] अपाकृति [के अर्थ] में होता है।

—मैदिनी कोश

(१७)

ओम्

अर्थ

मङ्गलमय उक्ति।

व्याख्या

मैदिनी कोश के अनुसार ॐ मङ्गलमय उक्ति है। ॐ का अर्थ मङ्गल नहीं है, अपितु मङ्गलमय अवसरों पर इसका उच्चारण किया जाता है जो वक्ता और श्रोता को मङ्गल प्रदान करता है ऐसा विश्वास है। नारद पुराण में वर्णन है कि सर्वप्रथम ॐ और अथ शब्द ब्रह्मा के कण्ठ से बाहर निकले थे इसलिये ये दोनों माङ्गलिक हैं। इस कारण से किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में ॐ और अथ इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया जाता है। योगसूत्र सट्श अनेक ग्रन्थों का आरम्भ अथ शब्द से हुआ है, वहीं छान्दोग्य और माण्डूक्य उपनिषदों का आरम्भ ॐ शब्द से हुआ है। पाणिनीय व्याकरण का प्रारम्भ अथ शब्द से हुआ है वहीं मुग्धबोध व्याकरण का प्रारम्भ ॐ शब्द से हुआ है। इस व्याकरण का प्रथम वाक्य है ॐ नमः शिवाय, जिसका दुर्गादास की टीका में “ॐ, शिव को नमस्कार है” इस प्रसिद्ध अर्थ के साथ-साथ “मङ्गल (शिव) के लिये ॐ को नमस्कार है” ऐसा अर्थ भी दिया गया है।

परम्परा

पुराण, कोशा

उद्धरण

सर्वप्रथम ब्रह्मा के कण्ठ को भेदन करके ॐ और अथ शब्द बाहर आये, अतः दोनों माङ्गलिक (मङ्गलमय) हैं।

—नारद पुराण

ॐ का प्रयोग मङ्गल के अर्थ में होता है।

—मैदिनी कोश

(१८)

## ओम्, ओंकार

अर्थ

उठाने वाला, उद्धारकर्ता।

व्याख्या

उपनिषद्, स्मृति, और पुराण के वचनों के अनुसार ॐ या ओंकार का अर्थ है उद्धारक—वह जो प्राणों को, शरीर को, या भक्त को ऊपर उठाता है। ॐ का उद्धारक के रूप में विशेष रूप से *छान्दोग्य उपनिषद्* में वर्णन प्राप्त होता है। उपनिषद् के अनुसार “और जब यह [आत्मा] इस शरीर से ऊपर जाता है तब इन्हीं रश्मियों से ऊपर जाता है, अथवा ॐ कहता हुआ ऊपर जाता है” तात्पर्य यह है कि प्रबुद्ध आत्मा सिर में स्थित ब्रह्मरन्ध्र से ॐ का ध्यान करता हुआ शरीर छोड़ता है।

अथर्ववेद के दो उपनिषदों के अनुसार ऊर्ध्व (“ऊपर”) और उत्क्रम (“ले जाने”) के कारण *प्रणव* को *ओंकार* कहा जाता है। पवित्र ग्रन्थों और व्याकरण ग्रन्थों में किसी स्पष्ट प्रक्रिया के बिना दी गई ऐसी निरुक्तियों को *निपातन* कहा जाता है। दोनों उपनिषदों का कथन है कि ॐ प्राणों को ऊपर ले जाता है। *टीपिका टीका* में टीकाकार कहते हैं कि ॐ मन और जठराग्नि के साथ प्राणों को मध्यम सुषुम्ना नाडी के माध्यम से छः चक्रों का भेदन करते हुए सिर तक ले जाता है।

स्मृति और पुराण में भी ॐ और *ओंकार* को लगभग इसी ढंग से समझाया गया है। *योगी याज्ञवल्क्य स्मृति* कहती है कि प्रणव सारे शरीर का उन्नमयन करता है, अर्थात् सारे शरीर को ऊपर उठाता है। यहाँ ऊपर उठाने का अर्थ सीधा करने से लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि ॐ का जप ध्यान के आसनों के लिये मेरुदण्ड को सीधा रखने का साधन है। *स्कन्द पुराण* के अनुसार प्रणव जापक भक्तों का उद्धार (उन्नयन) करता है, इसलिये ॐ कहलाता है। *लिङ्ग पुराण* भी कहता है कि जो ऊपर उठाता है वह ओंकार है। पुराण पर *शिवतोषिणी टीका* में गणेश नाटु इसे समझाते हुए लिखते हैं कि जब ॐ का उच्चारण होता है तो वह संपूर्ण [सूक्ष्म] शरीर को ऊपर उठाता है।

परम्परा

उपनिषद्, योग, स्मृति, पुराण।

व्युत्पत्ति

ऊर्ध्व + उत्क्रम से, उत् + √नी से, अथवा उत् + √नम् + णिच् से।

ऊर्ध्व ► ऊपर; उत्क्रम ► ले जाना। उत् + √नी ► उठाना, ऊपर उठाना। उत् + √नम् ► ऊपर चढ़ना, ऊपर उठना; णिच् ► प्रेरणार्थक प्रत्यय।

उद्धरण

उच्चारण करने मात्र से यह सभी प्राणों को ऊपर (ऊर्ध्वम्) उठाता है (उत्क्रामयति), अतः ओंकार कहलाता है।

—उपनिषद्

क्योंकि मात्र उच्चारण करने भर से यह पादतल से मस्तक तक सारे शरीर को उठाता है (सीधा करता है) अतः यह ओंकार कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

भक्तों को ऊपर उठाता है इसलिये इसे ॐ कहा गया है।

—स्कन्द पुराण

जो ऊपर उठाता है वही ओंकार नाम से प्रसिद्ध है।

—लिङ्ग पुराण

(१९)

## ओम्, प्रणव

अर्थ

परम देवता, परब्रह्मा

व्याख्या

वेदों से लेकर पुराणों और योगसूत्र सहित अनेक हिन्दू ग्रन्थों में ॐ को परब्रह्म कहा गया है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता ॐ को ब्रह्म बताते हुए समाप्त होती है। इसे समझाते हुए उवट और महीधर अपने भाष्यों में कहते हैं कि ॐ ब्रह्म का नाम या ब्रह्म की प्रतिमा है। गोपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, और अनेक उपनिषद् कहते हैं कि ॐ ब्रह्म है। नारद पुराण इसे स्पष्ट करते हुए कहता है कि ॐ वाचक (नाम) है और ब्रह्म वाच्य (नाम से निर्दिष्ट तत्त्व) है।

योगसूत्र में पतञ्जलि कहते हैं कि प्रणव ईश्वर का वाचक है। पतञ्जलि के अनुसार ईश्वर अविद्या आदि क्लेश, कुशल व अकुशल कर्म, उनके फल (विपाक), और वासना से अस्पृष्ट पुरुष विशेष है जिसमें निरतिशय सर्वज्ञता का बीज है; जो पूर्वाचार्यों का भी गुरु है; और जो काल से परे (अनवच्छिन्न) है। पतञ्जलि फिर प्रणव के जप और ईश्वर के ध्यान (अर्थभावन) की चर्चा करते हैं। योगसूत्र पर व्यास भाष्य के अनुसार इसका अर्थ यह है कि प्रणव के जप और ईश्वर के ध्यान से परमात्मा स्वतः प्रकाशित होता है।

वैजयन्ती कोश का प्रारम्भ एक मनोहारी पद्य से होता है—“ब्रह्म नामक ओंकार के अर्थ रूपी उस तत्त्व को नमस्कार है जो पूर्वाचार्यों का भी गुरु है और जो वाच्य शक्ति और वाचक शक्ति दोनों है।” यहाँ मन्त्र की दो शक्तियों की ओर संकेत है। मन्त्र से जिस देवता का आवाहन होता है वह वाच्य शक्ति है और मन्त्र स्वयं वाचक शक्ति है। वैजयन्ती कोश के श्लोक का तात्पर्य है कि ॐ इस मन्त्र की वाच्य शक्ति और वाचक शक्ति एक ही हैं। अर्थात् यद्यपि प्रणव वाचक है और ब्रह्म वाच्य है तथापि दोनों में कोई भेद नहीं है।

परम्परा

वेद, उपनिषद्, पुराण, योग, कोशा

उद्धरण

ॐ आकाश [के समान] परब्रह्म है।

—शुक्ल यजुर्वेद

ॐ ब्रह्म का नाम अथवा उसकी प्रतिमा है।

—शुक्ल यजुर्वेद पर भाष्य

निश्चित ही **प्रणव** ब्रह्म है।

—गोपथ ब्राह्मण

ॐ—यह ब्रह्म है।

—तैत्तिरीय आरण्यक, तैत्तिरीय उपनिषद्

हे सत्यकाम! यह जो **ओंकार** है वह निश्चित रूप से परब्रह्म (सगुण ब्रह्म) और अपर ब्रह्म (निर्गुण ब्रह्म) है।

—प्रश्न उपनिषद्

परब्रह्म तो वाच्य है और वाचक **प्रणव** (ॐ) कहा गया है।

—नारद पुराण

उसका वाचक **प्रणव** है। ईश्वर **प्रणव** का वाच्य है।

—योग सूत्र, उसपर व्यास भाष्य

(२०)

## ओम्, ओंकार

अर्थ

श्रीराम

व्याख्या

वाल्मीकीय रामायण में ब्रह्मा श्रीराम को **ओंकार** कहकर संबोधित करते हैं। अध्यात्म रामायण में अपने उद्धार के पश्चात् अहल्या श्रीराम की स्तुति करते हुए उन्हें **ओंकार** का वाक्य कहती हैं। रामानन्दीय सम्प्रदाय सट्श रामपरक वैष्णव संप्रदायों में ॐ को बहुधा श्रीराम के समान कहा जाता है। रामानन्दीय श्रीवैष्णवों द्वारा बहुसम्मानित **राम तापिनि उपनिषद्** में श्रीराम को वेदों का बीज **ओंकार** कहा गया है। रामानन्दीय वैष्णवों में **श्रीराम-स्तवराज-स्तोत्र** भी अत्यन्त आदृत है। इस स्तोत्र में श्रीराम का एक नाम **प्रणव** है। रामानन्द विरचित **वैष्णव-मताब्ज-भास्कर** में राम-बीज (रां) को प्रणवी (“**प्रणव** से युक्त”) कहा गया है।

ॐ को **तार** कहते हैं और **तारसार उपनिषद्** में इसे **तारक** भी कहा गया है। दोनों शब्दों का अर्थ है तारने वाला। इसी प्रकार **राम तापिनि उपनिषद्** में श्रीराम के षडक्षर मन्त्र को तारक कहा गया है। उपनिषद् के अनुसार श्रीराम का षडक्षर मन्त्र ॐ ही है। उसके छः अक्षर ॐ के अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, बिन्दु, और नाद हैं। **हारीत स्मृति** के अनुसार **श्रीरामाय नमः** (सीता सहित राम को नमस्कार है) मन्त्र को तारक ब्रह्म कहते हैं। स्मृति के अनुसार काशी में मरने वाले सभी जीवों को भगवान् शिव यह मन्त्र देते हैं। **राम-स्तवराज-स्तोत्र** में व्यास युधिष्ठिर से कहते हैं कि **श्रीराम** मन्त्र परम जाप्य है और इसका नाम **तारक ब्रह्म** है। **श्रीराम** इस मन्त्र का अर्थ है “हे मङ्गलमय राम” अथवा “हे सीता सहित राम”।

अन्यत्र राम नाम को ही ॐ कहा गया है। **महारामायण** में शिव पार्वती से कहते हैं कि ॐ राम शब्द का ही दूसरा नाम है। टीकाओं में इसे ऐसे समझाया गया है। राम शब्द पहले र् + आ + म् + अ में विभाजित होता है। अन्तिम अवर्ण का लोप होता है, और प्रथम दो वर्णों का विपर्यय (आगे-पीछे होना) होता है। इससे आ + र् + म् यह परिणाम होता है। फिर र् वर्ण विकृत होकर उ बनता है। तब आ + उ + म्—यह स्थिति होती है। अब सन्धि होकर ॐ बनता है। वर्णलोप, वर्णविपर्यय, और वर्णविकृति की इन प्रक्रियाओं को पृषोदरादि शब्दों के लिये पाणिनि के **पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्** सूत्र से समझा जा सकता है। संयोगवश राम शब्द में २ + १ = ३ मात्राएँ हैं, अतः यह भी ॐ की भाँति **त्रिमात्र** (१४) है।

**रामचरितमानस** में तुलसीदास कहते हैं कि राम का नाम ब्रह्मा, विष्णु, और शिव है। इसी प्रकार ॐ को भी देवत्रयी/त्रिदेव माना जाता है (१)। तुलसीदास आगे कहते हैं कि राम नाम वेदों के प्राण के समान है। टीकाओं के अनुसार वेदों के प्राण का अभिप्राय ॐ से है। ॐ को भी इस प्रकार वेदों



की आत्मा (*वेदात्मा*, पृ. [१०७](#)) और वेदों का बीज (*वेदबीज*, पृ. [७८](#)) कहा जाता है।

परम्परा

उपनिषद्, *रामायण*, वैष्णव मता

उद्धरण

वेदों के कारण *ओंकार* स्वरूप राम को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

—राम पूर्व तापिनी उपनिषद्

ब्रह्मा ने कहा, 'हे राघव, आप *ओंकार* हैं'

—वाल्मीकि रामायण

अहल्या ने कहा, 'हे राम, आप *ओंकार* के वाच्य हैं'

—अध्यात्म रामायण

(२१)

ओम्

अर्थ

लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत, और श्रीराम

व्याख्या

ॐ का यह अर्थ *राम-तापिनि-उपनिषद्* में प्राप्त होता है। वहाँ चार रघुकुल राजकुमारों को अकार, उकार, मकार, और अर्धमात्रा कहा गया है और साथ ही उन्हें चार अवस्थाओं (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, और तुरीय) का विभु भी कहा गया है। *उपनिषद्* के अनुसार लक्ष्मण अकार और विश्व (जाग्रत् अवस्था में जीव) हैं, शत्रुघ्न उकार और तैजस (स्वप्न अवस्था में जीव) हैं, भरत मकार और प्राज्ञ (सुषुप्ति अवस्था में जीव) हैं, और श्रीराम अर्धमात्रा और ब्रह्म (तुरीय अवस्था में जीव द्वारा साक्षात्कृत ईश्वर) हैं। ॐ को विश्व (वैश्वानर), तैजस, प्राज्ञ, और ब्रह्म जैसा यहाँ बताया गया है वैसा ही *माण्डूक्य उपनिषद्* में भी कहा गया है। *राम-तापिनि-उपनिषद्* में इन चारों को जैसे चार दशरथपुत्र कहा गया है, वैसे ही *गोपाल-तापिनि-उपनिषद्* में इन्हें चतुर्व्यूह कहा गया है (६)।

*रामचरितमानस* में अयोध्या के चार राजकुमारों का मिथिला की चार राजकुमरियों से विवाह के प्रसंग में तुलसीदास ॐ के उपर्युक्त अर्थ के आधार पर एक रूपक प्रस्तुत करते हैं। तुलसीदास कहते हैं सभी सुन्दरियाँ सुन्दर वरों के साथ एक ही मण्डप में सुशोभित हो रही हैं मानो अपने विभुओं के साथ चार अवस्थाएँ जीव के उर में विराज रही हों। टीकाओं में इसे कुछ इस प्रकार समझाया गया है। ऊर्मिला जाग्रत् अवस्था हैं और उनके विभु विश्व स्वरूप लक्ष्मण हैं, श्रुतिकीर्ति स्वप्न अवस्था हैं और उनके विभु तैजस स्वरूप शत्रुघ्न हैं, माण्डवी सुषुप्ति अवस्था हैं और उनके विभु प्राज्ञ स्वरूप भरत हैं, और सीता चतुर्थ (तुरीय) अवस्था हैं और उनके विभु परब्रह्म श्रीराम हैं।

*रामचरितमानस* में ही अन्यत्र चारों दशरथकुमारों का नामकरण करके वसिष्ठ मुनि दशरथ से कहते हैं, “हे राजन्, आपके चार पुत्र *बेदतत्त्व* (वेदों के तत्त्व) हैं।” टीकाओं में *बेदतत्त्व* को *प्रणव* बताया गया है, क्योंकि ॐ वेदों का तत्त्व या रस है। यह व्याख्यान भी *राम-तापिनी-उपनिषद्* में प्राप्त ॐ के वर्णन के अनुसार ही है।

परम्परा

उपनिषद्, वैष्णव मता

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् + अर्धमात्रा → ओम्।

अ ▶ लक्ष्मण; उ ▶ शत्रुघ्न; म् ▶ भरत; अर्धमात्रा ▶ श्रीराम।

उद्धरण

अकार अक्षर से संभूत लक्ष्मण जाग्रत् अवस्था में जीव अर्थात् विश्वरूप हैं। उकार अक्षर से संभूत शत्रुघ्न तैजसात्मक हैं अर्थात् स्वप्न अवस्था में जीव हैं। मकार अक्षर से संभूत भरत प्राज्ञात्मक हैं अर्थात् सुषुप्ति अवस्था के जीव हैं। अर्धमात्रात्मक श्रीराम परब्रह्म हैं और केवल आनन्द स्वरूप हैं।

—रामोत्तर तापिनी उपनिषद्

(२२)

ओम्

अर्थ

ब्रह्मा (जाम्बवान्), विष्णु (सुग्रीव), शिव (हनुमान्), शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण, सीता, और श्रीराम।

व्याख्या

ॐ की यह व्याख्या तारसार उपनिषद् में प्राप्त होती है। इस उपनिषद् के नाम का अर्थ है तार (८९) अर्थात् ॐ का सार या तत्त्वा इस व्याख्या में ॐ को आठ भागों में विभाजित करके इन आठ भागों को श्रीराम सभा का अष्टक बताया गया है।

ॐ के प्रथम तीन भाग पहले की तरह अकार, उकार, और मकार ये तीन अक्षर हैं। यहाँ अकार को ब्रह्मा का मूल बताया गया है और साथ ही ब्रह्मा को जाम्बवान् कहा गया है। रामायण के अनुसार जाम्बवान् का जन्म ब्रह्मा से हुआ है। उकार से उपेन्द्र (विष्णु) कहे गये हैं। उपेन्द्र शब्द का प्रारम्भ उ से ही होता है। साथ ही विष्णु को हरिनायक सुग्रीव बताया गया है। विष्णु का सूर्य से तादात्म्य बहुत स्थानों पर वर्णित है—दोनों को आदित्य और हरि कहा जाता है। रामायण के अनुसार सुग्रीव का जन्म सूर्य से हुआ है और वे वानरों के नेता हैं। वानर को संस्कृत में हरि भी कहते हैं, अतः सुग्रीव हरिनायक हैं। मकार से शिव की संभूति कही गयी है और साथ ही शिव को हनुमान् कहा गया है। अनेक हिन्दू ग्रन्थों में शिव और हनुमान् का ऐक्य वर्णित है।

ॐ के अगले तीन भाग हैं बिन्दु (नासिक्य ध्वनि), नाद (गूँज), और कला (जिसका साधारण अर्थ है मात्रा)। उपनिषद् में इन तीनों को क्रमशः लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न कहा गया है। साथ ही लक्ष्मण को धरणीधर अर्थात् पृथ्वी को धारण करने वाले शेष कहा गया है।

ॐ का साँतवा भाग है कलातीता सीता, जो कलाओं से परे हैं। उपनिषद् में इन्हें स्वयं भगवती कहा गया है। रामानन्दी संप्रदाय में सीता माता को प्रथम गुरु और श्रीराम की शक्ति माना गया है। अध्यात्म रामायण में सीता हनुमान् से कहती हैं कि वे जगत् का सृष्टि, पालन, और संहार करने वाली मूल प्रकृति हैं।

अन्ततोगत्वा उपनिषद् कहती है कि ॐ का आठवा भाग सीता से भी परे है। यह भाग परब्रह्म श्रीराम है।

परम्परा

उपनिषद्, वैष्णव मता

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् + बिन्दु + नाद + कला + कलातीता + पर → ओम्

अ ► ब्रह्मा/जाम्बवान्; उ ► विष्णु/सुग्रीव; म् ► शिव/हनुमान्; बिन्दु ► शत्रुघ्न; नाद ► भरत; कला ► लक्ष्मण; कलातीता ► सीता; पर ► राम

उद्घरण

अकार अक्षर से संभूत ब्रह्मा की संज्ञा है जाम्बवान् उकार अक्षर से उत्पन्न विष्णु हरिनायक अर्थात् सुग्रीव हैं। मकार अक्षर से संभूत शिव हनुमान् कहे गये हैं। ईश्वर-संज्ञक बिन्दु स्वयं चक्रवर्ती शत्रुघ्न हैं। शङ्ख नामक नाद को महान् शक्तिशाली भरत जानना चाहिये। कला से साक्षात् पुरुष और धरणीधर (शेष स्वरूप) लक्ष्मण उत्पन्न हुए हैं। कला से भी परे सीता नामक स्वयं भगवती हैं। और उनसे परे परमात्मा पुरुषोत्तम श्रीराम हैं।

—तारसार उपनिषद्

(२३)

## ओम्, प्रणव

अर्थ

देवी (शक्ति)।

व्याख्या

सनातन धर्म के पाँच प्रमुख सम्प्रदायों में एक है शाक्त सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय में देवी या शक्ति ही परम देवता हैं। शाक्त परम्पराओं में देवी *भागवत* एक प्रमुख ग्रन्थ है। इस पुराण में बारम्बार देवी को ही ॐ कहा गया है। प्रथम सर्ग में वेदों द्वारा की गयी स्तुति में देवी को *उद्गीथ* की अर्धमात्रा कहा गया है। ठीक इसी प्रकार सम्पूर्ण ॐ का प्रतिनिधित्व करने वाली अर्धमात्रा को उपनिषदों में श्रीकृष्ण (६) और श्रीराम (२०) भी कहा गया है।

पुराण के सप्तम सर्ग में देवताओं की स्तुति में देवी को *प्रणवार्थस्वरूपा* कहा गया है। अर्थात् *प्रणव* का अर्थ ही देवी का स्वरूप है। *शिव पुराण* में प्रतिपादित वाच्य और वाचक का अभेद (३९) मानने पर *प्रणव* और देवी एक ही हैं यह अर्थ निकलता है। सप्तम सर्ग में ही आगे देवता कहते हैं कि देवी *प्रणव* का रूप हैं और हींकार की मूर्ति हैं। हीं अनेक शाक्त मन्त्रों की बीज ध्वनि है। शाक्त मत में कभी-कभी हीं को *शाक्त प्रणव* (“शाक्त मत का ॐ”) भी कहा जाता है। देवताओं के वचन के अनुसार देवी ही शाक्त *प्रणव* हीं भी हैं और वैश्विक *प्रणव* ॐ भी हैं। सप्तम सर्ग में और आगे देवता कहते हैं कि देवी *प्रणवात्मिका* हैं, अर्थात् *प्रणव* ही देवी का स्वरूप है।

शाक्त सम्प्रदायों में एक और प्रमुख ग्रन्थ है देवी *माहात्म्य*, जिसे *दुर्गा सप्तशती* भी कहते हैं। देवी *माहात्म्य* के चतुर्थ अध्याय में इन्द्रादि देव *शब्दात्मिका* (“शब्द के स्वरूप वाली”) कहकर देवी की स्तुति करते हैं। *शब्द* का अर्थ यहाँ ॐ है। *शब्द* ॐ का नाम भी है (८७)। चार मुख्य टीकाओं के अनुसार *शब्दात्मिका* का अर्थ है शब्द ब्रह्म या नाद ब्रह्म। इन दोनों का ॐ से ऐवय कहा गया है (८६, ९८)। इसी श्लोक में देवी को तीनों वेदों का निधान (निवास-स्थान) कहा गया है। इसी प्रकार ॐ को भी *त्रिब्रह्म* (४) अर्थात् तीनों वेदों का निवास कहा जाता है।

परम्परा

पुराण, शाक्त मत।

उद्धरण

चौदह भुवनों की ईश्वरी उन प्रणवार्थ स्वरूप देवी की हम सेवा करते हैं।

—देवी *भागवत*

प्रणव रूप वाली और हीम् की मूर्ति [देवी] को नमस्कार है।

—देवी भागवत

प्रणवात्मिका (प्रणव स्वरूप वाली) आपको नमस्कार है।

—देवी भागवत

हे देवि, आप शब्द स्वरूप (ॐ) हैं। आप ऋग्वेद की सुविमल ऋचाओं, यजुर्वेद के मन्त्रों, और उद्गीथ के कारण रम्य पदपाठ से युक्त सामवेद के मन्त्रों का निधान हैं। आप देवत्रयी हैं। आप षडैश्वर्य से संपन्न भगवती हैं। जीवों के जीवन के लिये आप वार्ता (कृषि, वाणिज्य, और पशुपालन) हैं। सम्पूर्ण लोकों के लिये आप परम आर्तियों (पीडाओं) को हरने वाली हैं।

—शक्रादि देवी को, दुर्गा सप्तशती

(२४)

ओम्

अर्थ

प्राणायाम—साँस लेना, साँस रोकना, और साँस छोड़ना।

व्याख्या

प्राणायाम (प्राण का नियन्त्रण) पतञ्जलि के अष्टाङ्ग योग के आठ अङ्गों में से एक है। योग सूत्र में पतञ्जलि प्राणायाम की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि स्थिर और सुखद आसन लगाने पर श्वास और उच्छ्वास/प्रश्वास की गति का नियमन प्राणायाम है। *जाबाल दर्शन उपनिषद्*, *देवी भागवत*, और *योग याज्ञवल्क्य* में कहा गया है कि प्राणायाम प्रणवमय होने के कारण प्रणव ही है। तात्पर्य यह है कि *प्रणव* के जप के साथ ही प्राणायाम किया जाता है।

इन ग्रन्थों में ॐ की तीन ध्वनियों का प्राणायाम की तीन प्रक्रियाओं से तादात्म्य बताया गया है। उपनिषद् और *योग याज्ञवल्क्य* में यह इस प्रकार वर्णित है। पहली प्रक्रिया है *पूरक*, जिसमें अकार पर १६ मात्राओं तक ध्यान करते हुए ईडा नाडी (बाएँ नथुने) द्वारा साँस अन्दर ली जाती है। दूसरी प्रक्रिया है *कुम्भक*, जिसमें ६४ मात्राओं तक उकार पर ध्यान करते हुए साँस भीतर रोकी जाती है। तीसरी प्रक्रिया है *रेचक*, जिसमें ३२ मात्राओं तक मकार पर ध्यान करते हुए पिङ्गला नाडी (दाहिने नथुने) द्वारा साँस बाहर छोड़ी जाती है। ईडा नाडी से प्रारम्भ करके तीनों प्रक्रियाओं की पुनः पुनः आवृत्ति की जाती है। उपनिषद् का कथन है कि छः मास तक ऐसा प्रतिदिन करने से मनुष्य यत्नवान् (साधक) हो जाता है और एक वर्ष तक अभ्यास करने से ब्रह्मवेत्ता हो जाता है। *देवी भागवत* पर नीलकण्ठ की टीका में थोड़ा भिन्न वर्णन मिलता है। नीलकण्ठ के अनुसार पूरक ३२ मात्रा और रेचक १६ मात्रा का होता है।

हठयोग के प्रमुख ग्रन्थ *घेरण्ड संहिता* में *सगर्भ प्राणायाम* का वर्णन प्राप्त होता है। यह वर्णन प्राणायाम और ॐ का और सघन संबंध स्थापित करता है। इस प्राणायाम में राजस गुण और रक्त (लाल) वर्ण वाले ब्रह्मा का १६ मात्राओं तक ध्यान करते हुए साँस अन्दर ली जाती है। तत्पश्चात् सत्त्व गुण और कृष्ण (नील) वर्ण वाले विष्णु का ६४ मात्राओं तक ध्यान करते हुए साँस रोकी जाती है। इसके पश्चात् तामस गुण और श्वेत वर्ण वाले शिव का ३२ मात्राओं तक ध्यान करते हुए साँस बाहर छोड़ी जाती है। अन्यत्र भी ॐ का तीन देवताओं (१) और तीन गुणों (११) से संबंध प्रतिपादित किया गया है।

परम्परा

उपनिषद्, पुराण, योगा

व्युत्पत्ति



अ + उ + म् → ओम्।

अ ► साँस लेना (पूरक); उ ► साँस रोकना (कुम्भक); म् ► साँस छोड़ना (रेचक)।

उद्घरण

रेचक (साँस छोड़ना), पूरक (साँस लेना), और कुम्भक (साँस रोकना) से प्राणायाम कहा गया है। रेचक, पूरक, और कुम्भक वर्णत्रयात्मक (अकार, उकार, और मकार) कहे गये हैं। ब्रह्म ही प्रणव कहा गया है और प्राणायाम प्रणवमय है।

—जाबाल दर्शन उपनिषद्, देवी भागवत, योग याज्ञवल्क्य

(२५)

ओम्

अर्थ

ब्रह्मा (चतुर्मुख सृष्टिकर्ता)।

व्याख्या

यद्यपि ब्रह्मा त्रिदेव में से एक हैं, तथापि सनातन धर्म में उनकी उपासना न के समान है। राजस्थान के पुष्कर, गुजरात के खेड़ब्रह्मा, उत्तर प्रदेश के दुधई, और केरल के कोडवकल जैसे स्थानों में ब्रह्मा के गिने-चुने मन्दिर हैं। सनातन धर्म में ब्रह्मा की उपासना करने वाला कोई मुख्य संप्रदाय नहीं है और उनके नाम का ब्रह्मसंप्रदाय भी एक वैष्णव संप्रदाय है। तथापि पुराणों और महाकाव्यों में कई स्थानों पर ब्रह्मा का प्रणव और परब्रह्म से तादात्म्य स्थापित किया गया है।

मत्स्य पुराण में वर्णन आता है कि तारकासुर द्वारा पराजित होने के पश्चात् देवगण ब्रह्मा की शरण में जाते हैं। ब्रह्मा की स्तुति करते हुए देवता कहते हैं, “आप ओंकार हैं, आप आत्मा (परब्रह्म) हैं, अनन्त भेदों वाले विश्व के [सर्ग के हेतु] आप पहले [ब्रह्मा के रूप में] उत्पन्न होते हैं, विश्व की सृष्टि के अनन्तर आप सत्त्व की मूर्ति (विष्णु) हैं, और संहार के इच्छुक रुद्रमूर्ति (शिव) भी हैं। आपको नमस्कार है।” यहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा को प्रणव, त्रिगुण, और तीन क्रियाओं (उत्पत्ति, पालन, और संहार) का कर्ता कहा गया है। देवता आगे कहते हैं कि वेद और योगी जन ब्रह्मा की ही स्तुति करते हैं।

गरुड पुराण में स्वयं शिव द्वारा उक्त गुह्य मन्त्रों में से एक है ॐ ह्रीं हीम्। पुराण के अनुसार इस मन्त्र में ॐ ब्रह्मा का बीज है, प्रथम हीम् विष्णु है, और द्वितीय हीम् शिव है। ॐ का एक नाम है ब्रह्मबीज (५८)। पूर्वपद में ब्रह्म होने के कारण इस समास का वेदों का बीज, परब्रह्म का बीज, या ब्रह्मा का बीज ये तीनों अर्थ निकलते हैं।

संभवतः संस्कृत साहित्य में ब्रह्मा की सर्वश्रेष्ठ स्तुति कालिदास के कुमारसंभव में है। यह स्तुति द्वितीय सर्ग के बारह पद्यों में प्राप्त होती है। मत्स्य पुराण की भाँति यहाँ भी देवता तारकासुर द्वारा संत्रस्त हैं। देवता ब्रह्मा से कहते हैं, “आप को नमन हो। आप सृष्टि के पूर्व अकेले हैं। सृष्टि के पश्चात् तीन गुणों के विभाजन के लिए आप भेद को प्राप्त होते हैं और त्रिमूर्ति हो जाते हैं।” ब्रह्मा का यह वर्णन ॐ के तीन गुणों और त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के रूप में वर्णन के समान है। देवता ब्रह्मा की प्रशंसा करते हुए आगे कहते हैं, “तीन अवस्थाओं द्वारा अपनी महिमा उजागर (प्रकट) करते हुए आप एक होते हुए संहार, पालन, और सृष्टि का कारण बन जाते हैं।” ब्रह्मा को ॐ से संबन्धित करते हुए देवता कहते हैं, “आप उस वाणी (वेदों) के कारण (स्रोत) हैं जिसका प्रारम्भ ॐ से है, जिसका उच्चारण तीन स्वरों (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) से है, जिसका प्रतिपाद्य यज्ञ है, और जिसका फल स्वर्ग है।” ॐ ह्रीं हीम् मन्त्र समझाते हुए गरुड पुराण में ॐ को ब्रह्मा का बीज

कहा गया है जबकि यहाँ ब्रह्मा को ॐ का कारण बताया गया है।

परम्परा

पुराण, काव्य।

उद्धरण

आप (ब्रह्मा) *ओंकार* हैं।

—मत्स्य पुराण

ॐ ब्रह्मा का बीज है।

—गरुड पुराण

(२६)

## ओम्, पञ्चाक्षर

अर्थ

पाँच नाशरहित [भागों] से युक्त।

व्याख्या

गणेश पुराण के गणेश सहस्रनाम में गणेश का एक नाम है पञ्चाक्षरात्मा। इस नाम का “ॐ के विग्रह (शरीर) वाले” ऐसा अर्थ परम्परा से प्राप्त है। इस व्याख्या के अनुसार पञ्चाक्षर का अर्थ है ॐ और आत्मा का अर्थ है विग्रह या शरीर। साधारणतया आत्मा शब्द का प्रयोग संस्कृत में जीव के स्वरूप के लिए होता है, पर इस शब्द का एक अर्थ शरीर भी है। इसी कारण से पुत्र को आत्मज (“शरीर से जन्मा”) भी कहते हैं।

ॐ की तीन ध्वनियाँ (अकार, उकार, और मकार), बिन्दु, और नाद ॐ के पाँच नाशरहित भाग हैं। शिव पुराण के अनुसार ये शिव के पाँच मुखों से संबन्धित हैं। पुराण में शिव ब्रह्मा और विष्णु से कहते हैं कि सर्वप्रथम अकार उनके उतर मुख से, उकार पश्चिम मुख से, मकार दक्षिण मुख से, बिन्दु पूर्व मुख से, और नाद मध्य मुख से पाँच भागों में निकला (विजृम्भित हुआ), और फिर एकीभूत होकर एकाक्षर ॐ बना।

शिव के नमः शिवाय मन्त्र को पञ्चाक्षर मन्त्र कहते हैं, क्योंकि इसमें पाँच वर्ण हैं। शिव पुराण के ही अनुसार यह पञ्चाक्षर मन्त्र ॐ से उत्पन्न हुआ है। न, मः, शि, वा, और य—ये पाँच वर्ण क्रमशः अकार, उकार, मकार, बिन्दु, और नाद से उत्पन्न हुए हैं। इस कारण से भी ॐ को पञ्चाक्षर कहते हैं। यहाँ पञ्चाक्षर का “पाँच अक्षर के मन्त्र वाला” ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

ॐ के उपर्युक्त पाँच भागों से पाँच विश्व कृत्य भी संबन्धित हैं। शिव पुराण में ॐ के पाँच भागों की उत्पत्ति के वर्णन के पूर्व शिव इन कृत्यों का वर्णन करते हैं। ये पाँच कृत्य हैं सृष्टि (रचना करना), स्थिति (पालन करना), संहार (नाश करना), तिरोभाव (छिपाना), और अनुग्रह (मुक्ति या कृपा करना)। शिव इन पञ्च कृत्यों का पञ्च तत्त्वों से संबन्ध बताते हैं। पृथ्वी द्वारा सबकी सृष्टि होती है, जल द्वारा सबका प्रवर्धन होता है, अग्नि द्वारा सबका नाश होता है, वायु द्वारा सबका अपनयन होता है, और आकाश द्वारा सबका अनुग्रह होता है। शिव कहते हैं कि ॐ के पाँच भागों से संबन्धित इन पाँच कृत्यों को करने के लिए उनके पाँच मुख हैं।

शिव पुराण के इसी अध्याय में आगे त्रिदेव के स्थान पर पञ्चदेव का वर्णन है। शिव कहते हैं कि सृष्टि ब्रह्मा का कृत्य है, स्थिति विष्णु का, संहार रुद्र का, तिरोभाव महेश का, और अनुग्रह स्वयं शिव का कृत्य है। ये पाँच देव ॐ के पाँच भागों के प्रतीक हैं।

परम्परा

पुराण, भाष्य।

व्युत्पत्ति

**पञ्च + अक्षर → पञ्चाक्षर।**

**पञ्च** ► पाँच; **अक्षर** ► नाशरहित [भाग]।

उद्धरण

गणेश पञ्चाक्षरात्मा हैं। अकार, उकार, मकार, नाद, और बिन्दु—प्रणव स्थित ये पाँच आपके शरीर हैं अतः आप पञ्चाक्षरात्मा नाम से परिकीर्तित हैं।

—गणेश सहस्रनाम, तत्रत्य टीका

प्रणव (ॐ) के अकार, उकार, मकार, बिन्दु, और नाद ये पाँच अंश हैं।

—भागवत पुराण पर श्रीधरी टीका

(२७)

ओम्

अर्थ

ब्रह्मा, विष्णु, हर, महेश्वर, सदाशिव, और परमशिव।

व्याख्या

शिव पुराण की कैलास संहिता में ॐ का एक और अर्थ पञ्चक के रूप में प्रारम्भ होता है। इस अर्थ के अनुसार अकार, उकार, मकार, बिन्दु, और नाद ॐ के यह पाँच भाग क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, और सदाशिव हैं। इन पाँच देवों का पाँच विश्व कृत्यों से संबन्ध है। तमिलनाडु के शैव सिद्धान्त में इन कृत्यों को पञ्चकृत्य कहा जाता है। ये पाँच कार्य हैं सृष्टि (रचना), पालन (रक्षण), संहार (नाश), तिरोभाव (छिपाना या संवरण), और अनुग्रह (कृपा)। प्रथम तीन कार्यों से ही अनेक भारतीय दर्शनों में विश्वचक्र पूर्ण हो जाता है। तिरोभाव का अर्थ है आत्मा के स्वरूप, विश्व, और शिव का तिरोहित होना अर्थात् छिपना। अनुग्रह शिव की कृपा है जिससे आत्मा को ज्ञान एवं मुक्ति प्राप्त होते हैं। तिरुमन्तिरम् इस तमिल ग्रन्थ के अनुसार ये पञ्चकृत्य नटराज के नृत्य में इङ्गित हैं। चोल साम्राज्य की कांस्य प्रतिमाओं में नटराज का स्वरूप अमर हो चुका है। इसे नीचे चित्र में दर्शाया गया है।

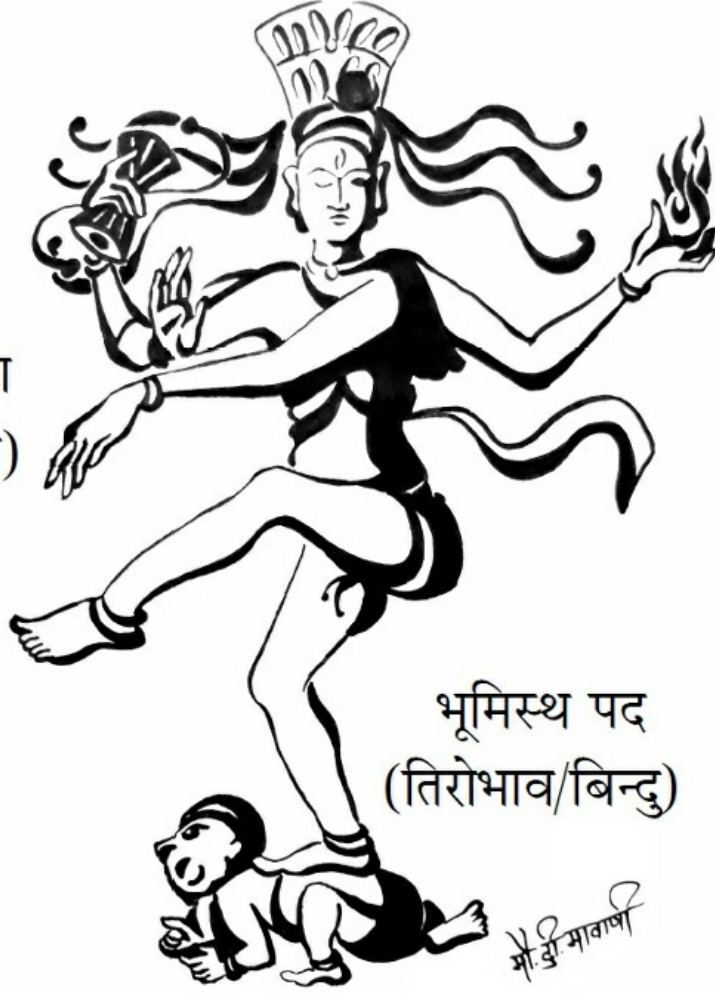
डमरु  
(सृष्टि/अ)

अग्नि  
(संहार/म्)

अभयमुद्रा  
(पालन/उ)

उत्थापित पद  
(अनुग्रह/नाद)

भूमिस्थ पद  
(तिरोभाव/बिन्दु)



मो. वी. मावर्णा

काश्मीर शैव मत में भी पञ्चकृत्य कहे गये हैं। *स्वच्छन्द तन्त्र* आदि ग्रन्थों में इनकी व्याख्या प्राप्त होती है। *प्रत्यभिज्ञा हृदय* के प्रथम पद्य में शिव को सतत (निरन्तर) पञ्च कृत्यों का विधान करते हुए वर्णित किया गया है। *लक्ष्मी तन्त्र* के अनुसार पञ्चकृत्य श्री अर्थात् नारायण की स्वतन्त्र शक्ति के कार्य हैं।

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् + बिन्दु + नाद → ओम्।

अ ► ब्रह्मा; उ ► विष्णु; म् ► रुद्र; बिन्दु ► महेश्वर; नाद ► सदाशिव।

उद्धरण

अकार स्रष्टा चतुरानन (ब्रह्मा) है, उकार रक्षणकर्ता हरि (विष्णु) है, और मकार संहारकर्ता हर (शिव) है। बिन्दु महेश्वर देव है और तिरोभाव कहा गया है। नाद को सब पर अनुग्रह करने वाला सदाशिव कहा गया है। नाद के ऊपर चिन्तन करने पर परात्पर शिव [प्राप्त होते हैं]।

—शिव पुराण



(२८)

ओम्

अर्थ

१ व्यापक और प्रथम, उत्कृष्ट, और उभय (सम), निर्माण और विलय २ सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, और सर्वशक्तिमान् ३ नरसिंह रूप में परब्रह्म।

व्याख्या

माण्डूक्य उपनिषद् में ॐ के तीन अक्षरों का विभिन्न धारणाओं से उद्गम दिखाकर एक गूढ़ अर्थ ध्वनित किया गया है। उपनिषद् के अनुसार अकार का मूल है *आप्ति* (व्याप्त करना) अथवा *आदिमत्ता* (सर्वप्रथम होना), उकार का मूल है *उत्कर्ष* (श्रेष्ठ होना) या *उभयत्व* (दोनों होना), और मकार का मूल है *मिति* (निर्माण करना) या *अपीति* (विलय होना)। इनका समावेश करने पर यह अर्थ निकलता है कि ॐ सर्वव्यापक, सर्वप्रथम, सर्वोत्कृष्ट, उभय (सगुण और निर्गुण, अथवा सम), निर्माण की प्रक्रिया, और विलय की प्रक्रिया है। उपनिषद् कहती है कि जो ॐ को ऐसा जानता है वह आप्तकाम होता है (इच्छाओं को प्राप्त करता है), आदि (अग्रणी) बनता है, ज्ञान परम्परा को उत्कृष्ट बनाता है, दोनों लोकों में समान होता है, सबका मान या निर्माण करता है, और सबके विलय का स्थान बनता है।

नृसिंह उतर तापिनी उपनिषद् में इसी के समान ॐ के तीन भागों की व्याख्या प्राप्त होती है। इस उपनिषद् में नरसिंह को ही परब्रह्म बताया गया है। उपनिषद् के अनुसार अकार का मूल है *आप्ततम* (सर्वव्यापक), उकार का मूल है *उत्कृष्टतम* (सर्वोत्कृष्ट), और मकार का मूल है *महाविभूति* (अत्यन्त शक्तिमान्)। *भागवत पुराण* के अष्टम स्कन्ध में ब्रह्मा द्वारा की गयी विष्णु की स्तुति में *महाविभूति* शब्द बारह क्रमानुगत श्लोकों में प्रयुक्त हुआ है। उपनिषद् के व्याख्यानों को एकत्र कर ॐ सर्वव्यापक, सर्वोत्कृष्ट, और सर्वशक्तिमान् है यह अर्थ प्राप्त होता है।

उपनिषद् में ॐ की तीनों ध्वनियों को परमात्मा परब्रह्म नरसिंह बताया गया है। इसका तात्पर्य है कि ॐ ही नरसिंह है और नरसिंह ही परब्रह्म है—तीनों एक हैं। यह सिद्धान्त नारसिंह संप्रदाय के दर्शन के अनुसार है। नारसिंह संप्रदाय में नरसिंह भगवान् ही परब्रह्म हैं। आज के समय में यह संप्रदाय लुप्तप्राय है।

परम्परा

उपनिषद्, वैष्णव मता

व्युत्पत्ति

अ + उ + म् → ओम्

अ ▶ आप्ति या आदिमत्त्व; उ ▶ उत्कर्ष या उभयत्व; म् ▶ मिति या अपीति; अ ▶ आप्ततम; उ ▶ उत्कृष्टतम; म् ▶ महाविभूति।

उद्धरण

अकार प्रथम मात्रा है, आप्ति (व्याप्त करना) या आदिमत्त्व (प्रथम होना) से अकार है ... उकार द्वितीय मात्रा है, उत्कर्ष या उभयत्व (दोनों होना) से उकार है ... मकार तृतीय मात्रा है, मिति (निर्माण) या अपीति (विलय) से मकार है।

—माण्डूक्य उपनिषद्

अकार का अर्थ है आप्ततम (सर्वव्यापक) ... उकार का अर्थ है उत्कृष्टतम (सर्वोत्कृष्ट) ... मकार का अर्थ है महाविभूति (सर्वशक्तिमान्)।

—नृसिंह उत्तर तापिनी उपनिषद्

अकार परमात्मा नरसिंह ब्रह्म है ... उकार परमात्मा नरसिंह ब्रह्म है ... मकार परमात्मा नरसिंह ब्रह्म है।

—नृसिंह उत्तर तापिनी उपनिषद्

## ओंकार/ओङ्कार

अर्थ

ॐ की ध्वनि

व्याख्या

शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद के प्रातिशाख्यों के अनुसार *कार* प्रत्यय से वर्णमाला का वर्ण अभिहित होता है। किसी भी वर्ण के पश्चात् *कार* लगाने से उस वर्ण का नाम बनता है। व्याकरण परम्परा में कात्यायन के एक वार्तिक के अनुसार *कार* प्रत्यय ध्वनि के अनुकरण के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार अ, उ, और म् वर्णों के नाम हैं अकार, उकार, और मकार। इसी कारण से तान्त्रिक साधना में प्रयुक्त पाँच साधनों (मद्य, मांस, मत्स्य, मदिरा, और मैथुन) को *पञ्च मकार* कहते हैं। ठीक इसी प्रकार सिक्खों के पाँच चिह्नों (केश, कंघा, किरपान, कड़ा, और कच्छहरा) को *पञ्च ककार* कहते हैं।

महाभाष्य पर कैयट कृत प्रदीप के अनुसार कुछ स्थानों पर शब्दों के पश्चात् भी *कार* प्रत्यय का प्रयोग होता है। इस वचन द्वारा *हुंकार* (पशु की हुँकार ध्वनि), *चीत्कार* (चिल्लाने की ध्वनि), और *ओंकार* (ॐ की ध्वनि) शब्द समझे जा सकते हैं। *ओंकार* का शाब्दिक अर्थ है ॐ की ध्वनि। चूँकि इसका अर्थ ध्वनि है, *ओंकार* नाम *स्वर* (४७) और *शब्द* (८७) नामों की भाँति ॐ के सगुण स्वरूप का द्योतक है। इसके विपरीत *निरञ्जन* (७१) आदि नाम ॐ के निर्गुण स्वरूप के द्योतक हैं। दोनों प्रकार के नामों के अस्तित्व से तात्पर्य है कि हिन्दू परम्पराओं में ॐ को सगुण और निर्गुण दोनों माना गया है।

*प्रणव* और *ओंकार* ॐ के लोकप्रिय नामों में अग्रगण्य हैं। स्मृति और पुराण ग्रन्थों के साथ-साथ *अमरकोश* नामक प्रसिद्ध कोश में *ओंकार* और *प्रणव* को समान बताया गया है। ध्यातव्य है कि *ओं-का-र* और *प्र-ण-व* दोनों नाम तीन अक्षरों (वर्णों) वाले हैं अर्थात् *त्र्यक्षर* (१००) हैं।

*ओंकार* और *ओङ्कार* दोनों वर्तनियाँ शुद्ध हैं और ये दोनों एक ही नाम के दो भिन्न उच्चारणों को दर्शाती हैं। पाणिनीय व्याकरण के एक नित्य विधिसूत्र के कारण *ओम्* + *कार* में मकार को अनुस्वार आदेश होने पर *ओंकार* रूप बनता है। स्पर्श व्यञ्जन के परे होने पर अनुस्वार को विकल्प से परसवर्ण (तत्तत् वर्ण का पञ्चम वर्ण) आदेश होता है। इस कारण से *ओङ्कार* ऐसा वैकल्पिक रूप बनता है। सिक्ख धर्म में हालाँकि अनुस्वार सहित *ऐँव ऐँमँकार* (या *ऐँ*) लिखा जाता है, इसका उच्चारण पञ्चम वर्ण सहित ओङ्कार ऐसे किया जाता है। इसका कारण है कि प्राकृत भाषाओं में स्पर्श वर्ण के पूर्व अनुस्वार का उच्चारण पञ्चम वर्ण के रूप में होता है।

स्मृति, पुराण, व्याकरण, कोश।

व्युत्पत्ति

ओम् + कार → ओंकार/ओङ्कार।

ओम् ► ॐ; कार ► ध्वनि या शब्द का द्योतक प्रत्यय।

उद्धरण

ओंकार [का नाम] प्रणव है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

वह ॐ ध्वनि ही संसार में प्रणव है।

—लिङ्ग पुराण

वर्ण से कार होता है। वर्ण से परे कार प्रत्यय होता है ऐसा कहना चाहिये। यथा अकार। कभी-कभी वर्णसमुदाय के अनुकरण से भी होता है।

—व्याकरण महाभाष्य, तत्रत्य प्रदीप

ओंकार और प्रणव समान हैं (समानार्थक हैं)।

—अमर कोश

(३०)

## प्रणव

अर्थ

१ प्रकृष्ट रूप से प्रशस्त या स्तुत २ प्रशंसा या स्तुति का प्रकृष्ट साधन।

व्याख्या

**प्रणव** ॐ के सर्वाधिक लोकप्रिय और प्राचीनतम नामों में अग्रगण्य है। अनेक कोशों में **प्रणव** का उल्लेख है। **प्रणव** शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग “ॐ ब्रह्म है” इस उद्घोष (१९) से अन्त होने वाली शुक्लयजुर्वेद की *वाजसनेयी माध्यन्दिन संहिता* में प्राप्त है। ॐ शब्द से प्रारम्भ होने वाली *छान्दोग्य उपनिषद्* में प्रणव शब्द का पाँच बार प्रयोग हुआ है। उपनिषद्, पुराण, स्मृति आदि धार्मिक ग्रन्थ और पाणिनिकृत *अष्टाध्यायी*, काव्य, नाटक, कोश आदि लौकिक ग्रन्थ—दोनों प्रकार के ग्रन्थों में **प्रणव** शब्द का प्रचुर प्रयोग है।

**प्रणव** शब्द प्र + √नु धातु से निष्पन्न होता है। प्र उपसर्ग का अर्थ है प्रकृष्ट रूप से अर्थात् अच्छे से, भली-भाँति। √नु धातु का अर्थ है प्रशंसा करना या स्तुति करना। **प्रणव** का अर्थ है प्रकृष्ट रूप से प्रशस्त अर्थात् वह जिसकी भली-भाँति स्तुति होती है। *छान्दोग्य उपनिषद्* कहती है कि जो साधक ॐ की प्रकृष्ट स्तुति करता है वह ॐ में प्रवेश करता है और देवताओं के समान अमृत (मरणरहित) हो जाता है। यहाँ प्रकृष्ट स्तुति के लिए *प्रणौति* शब्द आया है, जो **प्रणव** के समान प्र + √नु धातु से ही निष्पन्न है। उपनिषद्, स्मृति, *गीता*, और पुराण ॐ की प्रकृष्ट प्रशंसा करते हैं, अतः ॐ को **प्रणव** कहते हैं।

उपर्युक्त व्युत्पत्ति के अनुसार **प्रणव** का एक और अर्थ है प्रकृष्ट प्रशंसा या स्तुति का साधन। ॐ की प्रशंसा तो की ही जाती है, पर साथ ही ब्रह्म या साधक के इष्ट देवता की स्तुति के लिये ॐ का मन्त्रों में एक साधन के रूप में प्रयोग भी होता है। ऐतरेय *ब्राह्मण* में *प्रणौति* शब्द चार बार आया है, तीन बार देवताओं की स्तुति हेतु मन्त्रों में ॐ के उच्चारण का संदर्भ है। जब एकाक्षर मन्त्र के रूप में ॐ का स्वतन्त्र उच्चारण होता है तो ॐ ब्रह्म की स्तुति का साधन होता है। जब ॐ का मन्त्र के भाग के रूप में प्रयोग होता है तब ॐ शिव, विष्णु, गणेश, राम, दुर्गा आदि देवता विशिष्ट की साधना या उपासना का साधन होता है।

शिव की उपासना में ॐ के प्रयोग का विशेष महत्त्व है। शिवलिङ्ग की उपासना के संदर्भ में *लिङ्ग पुराण* कहता है कि लिङ्ग के ऊपर शिव का ध्यान मात्र **प्रणव** से की जानी चाहिये। *पद्म पुराण* की *शिव गीता* में शिव कहते हैं, “भस्म अभिमन्त्रित (धारण) करके जो **प्रणव** द्वारा मेरी भली-भाँति पूजा करता है, संसार में उससे श्रेष्ठ मेरा कोई भक्त नहीं है।” शिव आगे कहते हैं, “कुश घास की मञ्जरी से, बिल्व (बेल) के पत्तों से, अथवा पर्वतीय पुष्पों के साथ जो **प्रणव** से मेरी अर्चना करता है वह मुझे प्रिय है।”

परम्परा

पुराण, कोश, भाष्य।

व्युत्पत्ति

प्र + √नु + अप् → प्रणव।

प्र + √नु ► भली-भाँति स्तुति करना, प्रकृष्ट स्तुति करना; अप् ► किसी क्रिया के करण (साधन) के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

परम निर्वाण के सभी इच्छुकों द्वारा सबसे अधिक प्रणव इसकी प्रकृष्ट स्तुति होती है, अतः ॐ यह **प्रणव** नाम से परिकीर्तित (प्रसिद्ध) है।

—स्कन्द पुराण

**ओंकार** और **प्रणव** समानार्थक हैं। *प्रणूयते* अर्थात् जिसकी प्रकृष्ट स्तुति होती है वह **प्रणव** है।

—अमर कोश, तत्रत्य टीकाएँ

जिससे ब्रह्म या अपने इष्ट देवता की प्रकृष्ट स्तुति या उपासना होती है वह **प्रणव** है।

—शब्दकल्पद्रुम कोश

## प्रणव

अर्थ

१ नेता, अग्रणी, आगे ले जाने वाला २ प्रवर्तक, प्रेरक, प्रेरणा देने वाला ३ प्रेमी, प्रेम करने वाला

व्याख्या

स्कन्द पुराण के अनुसार **प्रणव** की व्युत्पत्ति प्र + √नी धातु से है। इस धातु के अनेक अर्थ हैं जिनमें ले जाना या अग्रणी होना प्रमुख हैं। पुराण के अनुसार ॐ अपने सेवक जनों (भक्तों) को परम पद (मोक्ष) की ओर ले जाता है, अतः इसे **प्रणव** कहते हैं। **नेता** शब्द भी √नी धातु से ही उत्पन्न है। **विष्णु सहस्रनाम** के दो नामों में नेता शब्द का प्रयोग है। इनमें से एक नाम है **योगविदां नेता**, जिसका एक टीका (भाष्य) के अनुसार भक्तों को मोक्ष के ओर ले जाने वाला ऐसा अर्थ है। यह अर्थ **स्कन्द पुराण** की उपर्युक्त व्याख्या के समान ही है।

**मैत्री उपनिषद्** में **प्रणव** शब्द की प्र + √नी से उत्पत्ति की ओर संकेत है। उस उपनिषद् में ॐ को **प्रणव** नामक **प्रणेता** (प्रवर्तक) कहा गया है। रामतीर्थ के भाष्य में इसकी पुष्टि होती है। भाष्य के अनुसार ॐ को **प्रणव** इसी कारण से कहते हैं कि यह तत्तत् कर्मों का प्रणेता (प्रकृष्ट प्रवर्तक) है। यहाँ **प्रणव** की वही व्युत्पत्ति इङ्गित है जो **स्कन्द पुराण** में है, पर प्र + √नी धातु का अर्थ यहाँ प्रवर्तन करना या प्रेरणा देना है। प्र + √नी के इसी अर्थ की ओर ऐतरेय **ब्राह्मण** में स्थित **प्राण** शब्द की व्याख्या में संकेत है। प्रजापति द्वारा ॐ की प्राप्ति के वर्णन के पहले ब्राह्मण में कहा गया है कि उदीयमान सूर्य सभी भूतों को प्रेरणा देता है (**प्रणयति**) इसलिये उसे **प्राण** कहते हैं। संयोगवश ॐ का प्राण (**प्रणव**, पृ. ३६) और सूर्य (**आदित्य**, पृ. ५०) दोनों से तादात्म्य कहा गया है।

**प्रणेता** शब्द के प्रवर्तक (प्रेरक) या प्रकृष्ट नेता दोनों अर्थ हैं। अनेक वैदिक मन्त्रों में उपास्य देवता को प्रणेता कहा गया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, और अथर्ववेद में प्रणेता शब्द प्राप्त है। ऋग्वेद में इन्द्र को चार बार, अग्नि और मरुतों को दो-दो बार, और वरुण व भग को एक-एक बार प्रणेता कहा गया है। ऋग्वेद में इन्द्र की संपत्ति (राय) को भी आह्लादकारी (तोषप्रद) होने के कारण प्रणेता कहा गया है। **तैत्तिरीय ब्राह्मण** में प्रजापति को प्रणेता कहा गया है।

प्र + √नी धातु का एक और अर्थ है प्रेम करना। **प्रणय** (प्रेम) शब्द इसी धातु से उत्पन्न है। अतः **प्रणव** का एक और अर्थ है वह जो प्रेम करता है। ॐ संपूर्ण मानवता से प्रेम करता है—ॐ का एक नाम **नारायण** है, जिसका एक अर्थ सभी मनुष्यों की शरण (५०)।

परम्परा

उपनिषद्, पुराण

व्युत्पत्ति

प्र + √नी से।

प्र + √नी ► १ ले जाना, अग्रणी होना २ प्रवर्तन करना, प्रेरणा देना ३ प्रेम करना।

उद्धरण

‘प्रणव नामक **प्रणेता** को’ का अर्थ है प्रकृष्ट रूप से तत्तत् कर्मों के प्रवर्तक को, इसी कारण से **प्रणव** नाम वाले [ॐ] को।

—मैत्री उपनिषद् पर टीका

अपने सेवक जन (भक्त) को जो परम पद तक ले जाता है, अतः उस **प्रणव** को।

—स्कन्द पुराण



(३२)

प्रणव

अर्थ

प्रकृति रूपी महासागर को पार करने के लिए नाव या पोता

व्याख्या

शिव पुराण में **प्रणव** का प्र + नव ऐसा विग्रह बताकर कहा गया है कि प्र का अर्थ प्रकृति (भौतिक जगत् का कारण) है और नव का अर्थ नाव या पोत है। अतः **प्रणव** का अर्थ है संसार के सागर (भवसागर) को पार करने का साधन। ॐ का एक नाम है **नार** (८९), जिसमें सांसारिक सागर को पार करने का भाव व्यक्त है। इसके अलावा ॐ की द्वितीय ध्वनि को **कर्ण** कहते हैं (१००), जिसका अर्थ है नाव को चलाने का चप्पू (नौकादण्ड)।

संस्कृत में नौ और नाव शब्दों का अर्थ है पोत, जहाज, या नौका। यूनानी और लैटिन के *ναῦς* (**नाऊस**) और *navis* (**नाविस**) इसके तुल्य हैं। इन शब्दों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अंग्रेज़ी के अनेक शब्द आए हैं, यथा *naval* (**नेवल**), *navy* (**नेवी**), *navigate* (**नैविगेट**), *nautical* (**नॉटिकल**), आदि।

परम्परा

पुराणा

व्युत्पत्ति

प्र + नव → प्रणवा

प्र ► (प्रकृति) भवसागर, संसार रूपी सागर; **नव** ► नाव (**नाव** शब्द का दूसरा रूप)।

उद्धरण

प्र अर्थात् प्रकृति से उत्पन्न संसार के महासागर के **नव** अर्थात् नाव को विद्वान् लोग **प्रणव** के नाम से जानते हैं।

—शिव पुराण

(३३)

प्रणव

अर्थ

‘आपके लिये कोई प्रपञ्च नहीं है।’

व्याख्या

शिव पुराण में ही **प्रणव** का एक अन्य अर्थ बताते हुए सूत अन्य ऋषियों से कहते हैं, **प्र** का अर्थ है प्रपञ्च (भौतिक जगत् या माया), **न** का अर्थ है नहीं, और **वः** का अर्थ है आप सबका। अतः **प्रणवः** का अर्थ है आपका [कोई] प्रपञ्च नहीं है। तात्पर्य यह है कि ॐ भौतिकता और माया से छुड़ाने वाला है।

**प्र** का प्रकृति अर्थ संस्कृत के **नामैकदेशग्रहणे नाममात्रग्रहणम्** न्याय के अनुसार है। जब नाम के एक भाग का ग्रहण हो तो संपूर्ण नाम समझना चाहिये। इस न्याय के आधार पर संस्कृत टीकाओं में बहुधा शब्दों के गूढ़ अर्थ दिये जाते हैं।

परम्परा

पुराणा

व्युत्पत्ति

**प्र + न + वः → प्रणवः।**

**प्र** ► (प्रपञ्च) १ भौतिकता २ माया; **न** ► नहीं; **वः** ► आप सबका (बहुवचन)।

उद्धरण

[**प्रणवः** को] **प्र** अर्थात् प्रपञ्च **न** अर्थात् नहीं है **वः** अर्थात् आप सबका—विद्वान् ऐसा जानते हैं।

—शिव पुराण

(३४)

**प्रणव**

अर्थ

आप सबको पूर्णतः [मोक्ष] दिलाने वाला।

व्याख्या

शिव पुराण में प्राप्त इस व्याख्या में सूत प्रथमान्त रूप **प्रणवः** का प्र + √नी से उत्पन्न **प्रण** और **वः** अर्थात् “आप सबको” ऐसा विग्रह करते हैं। सूत अन्य ऋषियों से कहते हैं, “ॐ आप सबको पूर्णतः मोक्ष की ओर ले जाता है, अतः उसे **प्रणव** कहते हैं।”

**प्रणव** का पहले भी प्र + √नी से उत्पत्ति दिखाकर अर्थ दिया गया है (३१)। वहाँ और यहाँ एक अन्तर है कि यहाँ ले जाना क्रिया का कर्म वः (“आप सबको”) इस प्रकार स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट है। तात्पर्य है कि ॐ सबके लिये मोक्ष का साधन है।

परम्परा

पुराण।

व्युत्पत्ति

**प्र + न + वः → प्रणवः।**

**प्र** ► प्रकृष्ट रूप से, पूर्णतः; **न** ► (√नी + उ से) ले जाने वाला; **वः** ► आप सबको।

उद्धरण

चूँकि यह प्रकृष्ट रूप से आप सबको मोक्ष की ओर ले जाता है अतः इसे **प्रणव** कहते हैं।

—शिव पुराण

(३५)

प्रणव

अर्थ

१ नवीन ज्ञान का प्रकृष्ट प्रदाता २ निरन्तर नवीन, सदा नया।

व्याख्या

शिव पुराण में प्रणव का एक और विग्रह मिलता है प्र + नव (नया)। संस्कृत का नव यूनानी के νέος (neos) और अंग्रेज़ी के new के समानान्तर है। यूनानी का νέος अंग्रेज़ी के neo-classical आदि शब्दों में प्राप्त है। पुराण के अनुसार नव का अर्थ है दिव्य ज्ञान, जो सदा नवीन रहता है। जो महात्माओं को प्रकृष्ट रूप से नव (नवीन ज्ञान) से संपन्न करता है वह प्रणव है।

विष्णु सहस्रनाम के प्रणव नाम को समझाते हुए बलदेव विद्याभूषण कहते हैं कि नित्य नूतन होने से विष्णु प्रणव हैं। ॐ के लिये यह अर्थ उपयुक्त है, चूँकि ॐ अन्तरहित (अनन्त, पृ. ५३) है और कभी न परिवर्तित होने वाला (अव्यय, पृ. ५४) है।

परम्परा

पुराण, भाष्य।

व्युत्पत्ति

प्र + नव → प्रणव।

प्र ► प्रकृष्ट रूप से; नव ► नया।

उद्धरण

दिव्य ज्ञान तो नूतन है। ॐ महात्माओं को नया और शुद्ध स्वरूप वाला नूतन ज्ञान करता (देता) है, अतः विद्वान् उसे प्रणव कहते हैं।

—शिव पुराण

नित्य नूतन होने से प्रणव है।

—विष्णु सहस्रनाम पर नामार्थसुधा भाष्य

(३६)

## प्रणव

अर्थ

प्राण (जीवन या क्रियाशक्ति)।

व्याख्या

स्मृति और पुराण ग्रन्थों में प्रणव शब्द को प्राण से जोड़कर ॐ को प्राण देने वाला अथवा साक्षात् प्राण कहा गया है। तलवकार आरण्यक में भी ॐ की तुलना प्राण से की गयी है।

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में ॐ को वेदों, देवताओं, शरीर, वाक् (वाणी), और मन को प्राण देने वाला कहा गया है। वैदिक मन्त्रों का उच्चारण ॐ के साथ होता है और ॐ के उच्चारण को वैदिक अध्ययन का रक्षक माना जाता है (८), इस प्रकार ॐ वेदों को प्राण देता है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार मृत्यु द्वारा देख लिये जाने पर देवता ॐ में प्रवेश करके अमर हो गये थे (६८)। इस प्रकार ॐ देवताओं के लिये भी प्राणदाता है। उपनिषद्, पुराण, और योगशास्त्र में ॐ को श्वास-प्रक्रिया कहा गया है (देखें पृ. २४)। श्वास-उच्छ्वास प्रक्रिया के रूप में ॐ शरीर को प्राण देता है। वाणी का परम सार (७८) होने के कारण ॐ वाणी को प्राण देने वाला है। अन्ततः, परब्रह्म होने के कारण ॐ मन को भी प्राण देता है, केन उपनिषद् कहती है, “जो मन के द्वारा मनन का विषय नहीं बन सकता पर जिसके कारण मन मनन करता है उसे ही ब्रह्म जानो।”

शिव पुराण में कहा गया है कि प्रणव सब प्राणियों का प्राण है। इस व्याख्या में प्राण का अर्थ जीवन भी है और पाँच प्राणवायु भी हैं। प्राण (हृदय में स्थित अन्न-प्रवेशन शक्ति), अपान (गुदा में स्थित मल-मूत्र के उत्सर्ग की शक्ति), समान (नाभि में स्थित अन्न-पाचन शक्ति), उदान (कण्ठ में स्थित भाषण शक्ति), और व्यान (सारे शरीर में स्थित निमेषादि व्यापार की शक्ति) ये पाँच प्राणशक्तियाँ हैं।

ॐ को विष्णु माना गया है (१०७), और विष्णु को विष्णु सहस्रनाम में प्राण और प्राणद (प्राण देने वाला) कहा गया है। ॐ को अग्नि भी माना गया है (३), और अग्नि को यजुर्वेद में प्राणद कहा गया है। ॐ को परब्रह्म भी कहा गया है (१९), और ब्रह्मसूत्र के अनुसार वेदों में प्राण शब्द का अर्थ ब्रह्म है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार सभी प्राणी प्राण में ही प्रवेश करते हैं (विलीन होते हैं) और प्राण से ही सर्गकाल में उदित होते हैं। ॐ के विषय में भी ऐसा कहा गया है (७६)।

चूँकि ॐ को प्राण और प्राण का प्रदाता दोनों कहा गया है, ॐ को प्राण का भी प्राण समझा जा सकता है। वैदिक ग्रन्थों में ॐ के नाम के अर्थ अर्थात् ब्रह्म को प्राणस्य प्राणः अर्थात् प्राण का भी प्राण कहा गया है।

परम्परा

वेद, स्मृति, पुराणा

व्युत्पत्ति

**प्राण → प्रणव**

**प्राण** ► क्रियाशक्ति, प्राणशक्ति।

उद्धरण

वह जो ॐ है वह अग्नि है, वाक् (वाणी) पृथ्वी है। ॐ वायु है, वाक् अन्तरिक्ष है। ॐ सूर्य है, वाक् आकाश है। ॐ प्राण है और वाक् यही वाक् है।

—तलवकार आरण्यक

ॐ ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, देवताओं, शरीर, वाक्, और मन के प्राणन के कारण **प्रणव** कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ब्रह्मा से प्रारम्भ होकर स्थावर तक सभी प्राणियों का प्राण यह प्रणव ही है, इसलिये ॐ **प्रणव** कहलाता है।

—शिव पुराण

(३७)

प्रणव

अर्थ

नमन कराने वाला।

व्याख्या

अथर्ववेद की दो उपनिषदों में प्रणव शब्द की उत्पत्ति प्र + √नम् धातु से दिखायी गयी है। √नम् धातु का अर्थ है आदरार्थ झुकना या प्रणाम करना। इसी धातु से नमस् (नमन करने की क्रिया) और प्रणाम (नमस्कार) शब्द व्युत्पन्न होते हैं। नमस्ते (आपको नमस्कार है) यह अभिवादन का शब्द नमस् शब्द से आया है। सन्धि के नियमों के अनुसार नमस् शब्द नमो या नमः भी बन सकता है। दुर्गा सप्तशती की प्रसिद्ध टेक नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः में नमस् शब्द पाँच बार प्रयुक्त हुआ है। ॐ नमः शिवाय और ॐ नमो भगवते वासुदेवाय जैसे अनेक मन्त्रों में नमस् शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इसका प्राकृत रूप णमो है जो जैन धर्म के णमोकार मन्त्र में पञ्च परमेष्ठियों (परम पूज्यों) को नमन करने के लिए प्रयुक्त होता है। जैन परम्परा में ॐ शब्द की व्युत्पत्ति भी पञ्च परमेष्ठियों की प्रथम ध्वनियों से दर्शायी गयी है। अरिहंत (आन्तरिक शत्रुओं पर विजय पाने वाले), असरीर (मुक्त सिद्ध), आयरिया (आचार्य), उवज्झाय (उपाध्याय), और मुनि (समस्त साधु)—ये पाँच परमेष्ठि हैं। सन्धि के नियमों के अनुसार इनकी प्रारम्भिक पाँच ध्वनियों के योग, अर्थात् अ + अ + आ + उ + म्, से ओम् (ॐ) निष्पन्न होता है।

इन दो अथर्ववेदीय उपनिषदों के अनुसार ॐ ब्राह्मणों को परब्रह्म के प्रति नमन करवाता है और सभी जीवों को [ब्रह्म, इष्ट देवता, या गुरु के प्रति] नमन करवाता है। सत्य ही है, नमस् शब्द वाले अनेक मन्त्रों के प्रारम्भ में होने के कारण ॐ ही साधक को उपास्य या ध्यातव्य देवता के प्रति नमन क्रिया का प्रवर्तक या प्रेरक है।

विष्णु सहस्रनाम पर सत्यभाष्य में प्रणव नाम को प्रणमयति इति प्रणवः (जो प्रणाम करवाता है वह प्रणव है) इस प्रकार समझाकर कहा गया है कि प्रणम नाम पाठान्तर से प्राप्त है। व्याकरण की दृष्टि से प्र + √नम् धातु से प्रणम शब्द ही उत्पन्न होता है। उपनिषदों और उनके भाष्य में यह प्रणम शब्द प्रणव कैसे बनता है यह नहीं कहा गया है। पृषोदरादि व्युत्पत्ति मानकर म का व में परिवर्तन समझा जा सकता है।

परम्परा

उपनिषद्, भाष्य।

व्युत्पत्ति

प्र + √नम् + णिच् + अच् → प्रणवा

प्र + √नम् ► आदरपूर्वक झुकना, प्रणाम करना; णिच् ► प्रेरणार्थक प्रत्यय; अच् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अच्छा, यह **प्रणव** क्यों कहलाता है? उच्चारित होने पर ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद रूपी अङ्गी रसों वाले ब्रह्म को ब्राह्मणों द्वारा प्रणाम करवाता है, अतः **प्रणव** कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

निश्चयपूर्वक प्रणव सभी प्राणियों को प्रणाम करवाता है, इसलिये **प्रणव** कहलाता है।

—अथर्वशिखा उपनिषद्

जो प्रणाम करवाता है वह **प्रणव** है।

—विष्णु सहस्रनाम का सत्यभाष्य



(३८)

## प्रणव

अर्थ

१ जीवन, प्राणों, और जीवों का रक्षक २ जीवों को प्रेम करने वाला ३ प्राणों और जीवों को व्याप्त करने वाला ४ जीवों को बढ़ाने वाला।

व्याख्या

लिङ्ग पुराण में प्रणव शब्द का प्राण + अवति ऐसा विग्रह दिखाया गया है। प्राण शब्द के अनेक अर्थ हैं जिनमें जीवन, पञ्च प्राण, और जीव यहाँ संगत होते हैं। अवति क्रिया √अव् धातु का रूप है। इस धातु के उन्नीस अर्थ हैं (१०९)। इनमें से चार—रक्षा करना, प्रेम करना, प्रवेश या व्याप्त करना, और बढ़ाना—यहाँ उपयुक्त हैं। लिङ्ग पुराण में यह नहीं बताया गया है कि प्राण का प्रथम दीर्घ स्वर प्रणव में ह्रस्व कैसे होता है। इस अनियमित शब्द को पृषोदरादि गण में जानना चाहिये। इसी प्रकार प्रण और अव के योग की सन्धि के नियमों के अनुसार प्रणाव ऐसा दीर्घ मध्य स्वर वाला शब्द बनना चाहिये, पर यहाँ शकन्ध्वादि शब्दों जैसा अपवाद है ऐसा समझना चाहिये।

मनीषा (“बुद्धि”) = मनस् (“मन [की]”) + ईषा (“गति”) आदि शकन्ध्वादि शब्दों में प्रथम पद का अन्तिम स्वर और उसके बाद के व्यञ्जनों का सन्धि में लोप होता है। इसलिये मनस् + ईषा में मनस् के अन्त्य अस् भाग का लोप होकर मन् + ईषा = मनीषा ऐसा रूप बनता है। इसी प्रकार प्रण + अव में प्रण् + अव होकर प्रणव ऐसा सर्वलघु रूप बनता है ऐसा समझना चाहिये। एक अन्य उदाहरण है पतत् (“गिरता हुआ”) + अञ्जलि (“जुड़े हाथ [में]”) = पतञ्जलि।

प्राण और अव दोनों घटकों के अनेक अर्थ होने के कारण लिङ्ग पुराण की व्याख्या से प्रणव (ॐ) के अनेक अर्थ निकलते हैं। जो जीवन, प्राणों, और प्राणियों (जीवों) की रक्षा करता है वह प्रणव है। श्वास के रूप में (३६) प्रणव जीवन और प्राणों का भरण-पोषण करके उनकी रक्षा करता है। मृत्यु से रक्षक होने के कारण (६८) ॐ जीवों की रक्षा करता है।

सभी प्राणियों को प्रेम करने वाला प्रणव है। ॐ को नारायण कहते हैं, जिसका एक अर्थ है सभी मनुष्यों और जीवों की शरण (७०)। ॐ सभी जीवों को अपनाता है, स्वीकार करता है।

वह जो प्राणों और प्राणियों को व्याप्त करता है प्रणव है। ॐ प्राणों का भी प्राण है (३६), अतः प्राणों को व्याप्त करता है। ॐ योगियों को भी व्याप्त करता है—शिव पुराण के अनुसार सूक्ष्म प्रणव योगियों के हृदय में स्थित है। ॐ प्राणियों को भी व्याप्त करता है। गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि ईश्वर सभी भूतों के हृदय स्थान में रहता है और योगसूत्र के अनुसार ईश्वर का नाम प्रणव या ॐ (१९) है।

अन्ततः, जो जीवों को बढ़ाता है वह **प्रणव** है। पुराणों का वचन है कि बढ़ने या बढ़ाने के कारण ॐ को **ब्रह्म** कहते हैं (७७)। **लिङ्ग पुराण** में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्म भावों (उत्पन्न जीवों) का पोषण और वर्धन करता है इसलिये **ब्रह्म** कहलाता है।

परम्परा

पुराणा

व्युत्पत्ति

√अच् + अच् → अव; प्राण + अव → प्रणव।

√अच् ► १ रक्षा करना २ प्रेम करना ३ प्रवेश करना, व्याप्त करना ४ बढ़ना; अच् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय; प्राण ► १ जीवन २ पाँच प्राणों में से एक ३ जीवा

उद्घरण

वह जीवन/प्राणों/प्राणियों की रक्षा/प्रीति/व्याप्ति/वृद्धि करता है, अतः **प्रणव** कहलाता है।

—लिङ्ग पुराण

(३९)

## प्रणव, ओंकार

अर्थ

शिव

व्याख्या

शैव मत हिन्दू धर्म के प्रमुख मतों में से एक है। शैव मत की अनेक परम्पराओं में शिव ही परब्रह्म माने गए हैं। साकार (रूप सहित) और निराकार (मानव रूप से रहित अर्थात् लिङ्ग)—शिव दोनों ही हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कुछ पुराणों में ॐ को शिव बताया गया है। जिस प्रकार योगसूत्र में कहा गया है कि ईश्वर का नाम **प्रणव** है और **प्रणव** का जप ही ब्रह्म का अर्थभावन या ध्यान है (१९), उसी प्रकार *लिङ्ग पुराण* के अनुसार **प्रणव** शिव का सर्वश्रेष्ठ नाम है और **प्रणव** के जप से शिव की भावना (शिव का ध्यान) होती है। उसी पुराण में शिव को **ओंकार** नामक जगद्गुरु भी कहा गया है।

*मत्स्य पुराण* में ॐ की तीनों ध्वनियों को परोक्ष रूप से शिव बताया गया है। एक स्तोत्र के अनुसार शिव की प्रशंसा करते हुए शुक्र कहते हैं कि शिव ही **प्रणव** में तीनों वेद हैं। तीन वेद का यहाँ अर्थ है ॐ की तीन ध्वनियाँ—अकार, उकार, और मकार (४)। *शिव पुराण* में शिव स्वयं पार्वती से कहते हैं कि प्रणव और शिव में कोई भेद नहीं है।

महाकाल कृत *कपूर्वादि स्तोत्र* इस कौल कृति में भगवती काली को त्र्यक्षरे 'ति' कहा गया है। एक टीका में इसका अति + त्र्यक्षरे ऐसा विग्रह दिखाकर त्र्यक्षर (शिव) से भी अतीत (परे) ऐसा अर्थ समझाया गया है। क्योंकि त्र्यक्षर भी ॐ का ही नाम है (१००), टीका में ॐ और शिव को एक माना गया है।

मध्य प्रदेश में स्थित ओंकारेश्वर शिव के बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से एक है। यद्यपि *ओंकारेश्वर* शब्द का सामान्य अर्थ है “ॐ का ईश्वर”, तथापि इसे “वह जिसका ईश्वर ॐ है” और “ॐ भी और ईश्वर (शिव) भी” ऐसे भी समझा जा सकता है।

परम्परा

पुराण, शैव मत।

उद्धरण

उस परमात्मा शिव का वाचक **प्रणव** है। शिव, रुद्र, आदि शब्दों से भी **प्रणव** श्रेष्ठ कहा गया है। **प्रणव** के वाच्य शम्भु की भावना भी उसके (**प्रणव**) के जप से होती है।

—लिङ्ग पुराण

नाद के ऊपर **ओंकार** नामक जगद्गुरु शिव का ध्यान करना चाहिये।

—लिङ्ग पुराण

[शिव को]—जो **प्रणव** में ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद हैं।

—मत्स्य पुराण

सदाशिव! **ओंकार** रूप आपको नमन हो। आप अकार हैं, आप उकार हैं, और आप मकार हैं।

—स्कन्द पुराण

शिव ने कहा, 'मैं सर्वगामी शिव ॐ इस एकाक्षर मन्त्र में स्थित हूँ। शिव ही यह **प्रणव** है, अथवा **प्रणव** ही शिव कहा गया है। इसका कारण है कि वाच्य और वाचक में थोड़ा-सा भी भेद नहीं है।'

—शिव पुराण

(४०)

## उद्गीथ, त्रिमात्र

अर्थ

सूर्य, वायु, और अग्नि

व्याख्या

ॐ का एक प्रसिद्ध नाम है **उद्गीथ**। *छान्दोग्य उपनिषद्* इस नाम को **उत्, गी, थ**—इन तीन भागों में विभक्त करती है और इनका क्रमशः सूर्य, वायु, और अग्नि अर्थ बताती है। टीकाओं में इसे यँ समझाया गया है—**उत्** का तात्पर्य है **उत्थान** अथवा सूर्य के उगने की क्रिया, **गी** का तात्पर्य है **गिरण** अर्थात् वायु द्वारा अग्नि या गन्ध को निगलने की क्रिया, और **थ** का तात्पर्य है **स्थान** अर्थात् अग्नि का पवित्र यज्ञ का स्थान होने का लक्षण। ॐ तीनों देवताओं का वाचक है।

सूर्य, वायु, और अग्नि का हिन्दू धर्म में विशेष स्थान है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में इस त्रयी की प्रार्थना इस प्रकार है—“सूर्य स्वर्ग में स्थित जनों से हमारी रक्षा करें, वायु अन्तरिक्ष में स्थित बाधकों से हमारी रक्षा करें, अग्नि पृथ्वी पर स्थित शत्रुओं से हमारी रक्षा करें।” निरुक्त की परम्परा में तीन ही देवता माने गये हैं—पृथ्वी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु (अथवा इन्द्र), और स्वर्ग में सूर्य। इसी संदर्भ में निरुक्त में यास्क कहते हैं कि एक ही परब्रह्म की अनेक विधियों से स्तुति होती है (**एक आत्मा बहुधा स्तूयते**) और अन्य देवता (अग्नि, वायु, सूर्य आदि) एक ही परब्रह्म के अङ्ग हैं। सत्य ही है कि विश्वेदेव (सभी देवताओं) के प्रति ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि एक होते हुए भी आदित्य को मेधावी बहुत प्रकार से कहते हैं (**एकं सदिप्रा बहुधा वदन्ति**)—आदित्य (सूर्य) को इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, गरुड, यम, और मातरिश्वा (वायु) कहते हैं। यह ऋचा न केवल हिन्दू धर्म के अनेक देवताओं के एकत्व को प्रतिपादित करती है (सारे देवता एक ही देवता के रूप हैं), यह इष्टदेव के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन करती है। जिस प्रकार यहाँ सभी देवताओं को सूर्य के रूप में देखा गया है, उसी प्रकार हिन्दू धर्म में सभी देवता इष्टदेव के ही स्वरूप माने जाते हैं। यह इष्टदेव सूर्य, अग्नि, या वायु हो; अथवा गणेश, विष्णु, शिव, देवी, राम, या कृष्ण हो।

**जैमिनीय आरण्यक** में सूर्य, वायु, और अग्नि को तीनों लोकों का **सार** बताकर इन तीनों की तुलना वाणी के **सार** (३२) ॐ से की गयी है। **मैत्री उपनिषद्** में इस त्रयी को ॐ का भास्वान् (द्युतिमान्) शरीर कहा गया है (७०)।

**योगी याज्ञवल्क्य स्मृति** कहती है कि ॐ का एक नाम **त्रिमात्र** (१४) है—अग्नि, वायु, और सूर्य। यहाँ मात्रा का अर्थ है भाग अथवा परिच्छद (राजा के पीछे चलने वाला समाज)। तात्पर्य यह है कि निरुक्त के तीनों परम देवता ॐ के तीन भाग या परिकर हैं।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

उत् + गी + थ → उद्गीथ; त्रि + मात्रा → त्रिमात्रा

उत् ▶ सूर्य; गी ▶ वायु; थ ▶ अग्नि। त्रि ▶ तीन; मात्रा ▶ १ भाग २ परिकर, राजसमाज।

उद्धरण

सूर्य ही उत् हैं, वायु गी हैं, अग्नि थ हैं ... वह उद्गीथ अग्नि, वायु, और सूर्य हैं।

—छान्दोग्य उपनिषद्

अग्नि, वायु, और सूर्य के कारण ॐ को त्रिमात्र कहा जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(४१)

उद्गीथ

अर्थ

प्राण और वाणी।

व्याख्या

बृहद् आरण्यक उपनिषद् में उद्गीथ शब्द को प्राण और वाणी का युग्म बताया गया है। यह एक कथा के संदर्भ में है जो इस प्रकार है। यही कथा कुछ अन्तरों के साथ छान्दोग्य उपनिषद् में भी प्राप्त है। प्रजापति के पुत्रों—देवों और असुरों—में तीनों लोकों के लिये स्पर्धा हुई (युद्ध हुआ)। देवों की संख्या अल्प थी। उन्होंने इन्द्रियों के देवताओं को अपनी विजय के लिये उद्गीथ का गान करने के लिये कहा। एक-एक करके वाणी, घ्राण (नाक), चक्षु (आँख), श्रोत्र (कान), और मन के देवताओं ने उद्गीथ का गान किया। पाँचों ने गान के भोग को देवों को समर्पित किया पर गान से प्राप्त कल्याण को अपने लिये रख लिया। उनके गान को जानकर असुरों ने पाँचों को पाप से विद्ध कर दिया। यही कारण है कि बोलने, सूँघने, देखने, सुनने, और सोचने की इन्द्रियाँ पुण्य और पाप दोनों से संबद्ध हैं। तत्पश्चात् देवों ने प्राण से उद्गीथ का गान करने को कहा। प्राण ने कल्याण को अपने लिए नहीं रखा। असुरों ने जब प्राण को पाप से विद्ध करने का प्रयास किया तो वे स्वयं नष्ट होकर बिखर गए। प्राण ने फिर अन्य पाँचों देवताओं को पाप रूपी मृत्यु से मुक्त किया और उनको अग्नि, वायु, सूर्य, दिशाओं, और चन्द्र में परिणत किया। तत्पश्चात् प्राण ने अन्न की प्राप्ति के लिये गान किया और उस अन्न से पाँचों देवों की क्षुधा शान्त की। इसी कारण से प्राण को अङ्गों का रस (सार) कहते हैं।

उपनिषद् कहती है कि प्राण की पुष्टि से सभी देवता पुष्ट होते हैं, और जो ऐसा जानता है वह अपने आश्रितों का भरण-पोषण करता है और उसके प्रतिकूल कोई भी शत्रु असमर्थ होता है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कल्याण को अपने लिये न रखते हुए उद्गीथ का गान करके प्राण हानि से सुरक्षित रहा और दूसरों का पोषक बन गया, उसी प्रकार निःस्वार्थ पुण्य कर्म करने वाला हानि से सुरक्षित रहता है और अन्यो का पोषण करता है।

उपनिषद् आगे कहती है कि प्राण और वाणी को एक साथ उद्गीथ कहते हैं। उद् का अर्थ है प्राण और गीथ का अर्थ है वाणी। इस कथानक में प्राण और उसके गान (वाणी) ने देवों की असुरों से रक्षा करके उन्हें विजयी बनाया। उद्गीथ (ॐ) को रक्षक भी बताया गया है—कूर्म पुराण के अनुसार प्रणव को रक्षक होने के कारण ही ॐ कहते हैं (देखें ओम्, पृ. १०९)।

परम्परा

उपनिषद्।

व्युत्पत्ति

उत् + गीथ → उद्गीथ

उत् ► प्राण; गीथ ► वाणी।

उद्गरण

प्राण ही उत् है, क्योंकि प्राण के द्वारा ही यह सब उत्तब्ध (ऊपर उठाया हुआ) है। वाणी ही गीथ है [क्योंकि वाणी गायी जाती है]। जो उत् और गीथ है वह उद्गीथ है।

—बृहद् आरण्यक उपनिषद्



(४२)

उद्गीथ

अर्थ

प्राण, वाणी, और अन्न।

व्याख्या

ॐ का यह अर्थ *छान्दोग्य उपनिषद्* में प्राप्त है। यह उपनिषद् ॐ से ही प्रारम्भ होती है। उपनिषद् कहती है कि ॐ इस नाशरहित **अक्षर उद्गीथ** की उपासना करनी चाहिये। उपनिषद् आगे कहती है कि उद्गीथ के अक्षरों—*उत्*, *गी*, और *थ*—की भी उपासना करनी चाहिये। उपनिषद् इन तीनों अक्षरों के अर्थ भी देती है। संस्कृत के संधि के नियमों के अनुसार जब तकार के बाद गकार आता तो तो तकार के स्थान पर दकार आदेश हो जाता है। यथा *सत्* (सत्त्वा) + *गुरु* = *सद्गुरु*। इस प्रकार *गी* के परे होने पर *उत्* के स्थान पर *उद्* ऐसा रूप बनता है जिससे **उद्गीथ** शब्द बनता है।

उपनिषद् के अनुसार प्राण ही *उत्* हैं क्योंकि प्राण के द्वारा ही मनुष्य उठता है (*उत्तिष्ठति*)। तात्पर्य यह है कि जब तक जीव के पास प्राण रहता है और उसकी साँस चलती रहती है तभी तक वह नींद से उठकर खड़ा हो पाता है। नींद से उठने को किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रथम कार्य का रूपक भी समझा जा सकता है। *कठ उपनिषद्* की श्रुति है—**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वराग्निबोधत** अर्थात् “उठो, जागो, और वरों (श्रेष्ठ मुनियों) को प्राप्त करके ज्ञान प्राप्त करो।”

उपनिषद् के अनुसार दूसरे अक्षर *गी* का अर्थ है वाणी। यह शब्द  $\sqrt{\text{गृ}}$  धातु (बोलना) से उत्पन्न है। इसी धातु से वाणी के लिये *गीर्* शब्द भी उत्पन्न हुआ है। इसीलिये सरस्वती को *गीर्देवी* (वाणी की देवी) भी कहते हैं।

उपनिषद् के अनुसार तीसरे अक्षर *थ* का अर्थ है अन्न। यह  $\sqrt{\text{स्था}}$  धातु (रुकना, ठहरना) से निष्पन्न है। अन्न को *थ* कहते हैं क्योंकि अन्न पर ही सब कुछ स्थित है।

समन्वय करने पर **उद्गीथ** का अर्थ है प्राण, वाणी, और अन्न की त्रयी। यह अर्थ *बृहद् आरण्यक उपनिषद्* में प्राप्त प्राण और वाणी अर्थ (४१) का विस्तृत रूप है। *बृहद् आरण्यक उपनिषद्* में प्राण के संदर्भ में बताया गया है कि कैसे प्राण ने देवों की रक्षा की और अन्न से देवों का पोषण किया। इसी प्रकार ॐ को भी रक्षक (१०९) और पोषक (देखें *गुणजीवक*, पृ. ६७) के रूप में देखा जाता है।

साठ उपनिषदों का जर्मन भाषा में अनुवाद करने वाले पॉल डौइसॉन ने इस संदर्भ में कहा है कि **उद्गीथ** का प्राण, वाणी, और अन्न यह अर्थ मनुष्यों की तीन प्रमुख गतिविधियों—साँस लेना, बोलना, और भोजन करना—से संबद्ध है।

परम्परा

उपनिषद्

व्युत्पत्ति

उत् + गी + थ → उद्गीथा

उत् ► प्राण; गी ► वाणी; थ ► भोजन।

उद्गरण

प्राण ही उत् है क्योंकि प्राण से ही जीव उठता है (उत्तिष्ठति); वाणी गी है क्योंकि वाणी को गिरः कहते हैं; अन्न थ है क्योंकि अन्न में सब स्थित है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

(४३)

उद्गीथ

अर्थ

ऊँचे स्वर में गाया जाने वाला

व्याख्या

सामवेद के एक स्तोत्र में प्रत्येक मन्त्र (सामन्) के पाँच भाग होते हैं जिनमें तीसरे भाग को **उद्गीथ** कहते हैं। **उद्गीथ** का पाठ ॐ से प्रारम्भ होता है। सामवेद की छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार यही कारण है कि ॐ को **उद्गीथ** कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् में **उद्गीथ** शब्द साठ से अधिक बार प्रयुक्त हुआ है।

व्याकरण की दृष्टि से **उद्गीथ** शब्द √गै धातु (गाना) उत्पन्न हुआ है। गान और गीत शब्द भी √गै धातु से उत्पन्न हैं। दोनों का अर्थ है गाया जाने वाला गान। **उद्गीथ** में उत् उपसर्ग का अर्थ है ऊँचे से या उच्च स्वर में। उत् उपसर्ग को सन्धि में उद् आदेश हुआ है (४२)। इस प्रकार **उद्गीथ** का शाब्दिक अर्थ है ऊँचे स्वर में गाया जाने वाला। **श्वेताश्वतर उपनिषद्** में ब्रह्म को **उद्गीत** कहा गया है। **उद्गीत** और **उद्गीथ** दोनों शब्द का एक ही अर्थ है। इन दोनों से संबद्ध शब्द है **उद्गीता**, जिसका अर्थ है सामवेद का गान करने वाला। गीता में कृष्ण कहते हैं कि वे वेदों में सामवेद हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि **उद्गीथ** सामवेद का रस है। इस प्रकार **उद्गीथ** प्रमुख वेद का रस या सार है। **छान्दोग्य उपनिषद्** में इसे सभी रसों का श्रेष्ठ रस भी कहा गया है (७८)। **दुर्गा सप्तशती** में इन्द्रादि देवता देवी की स्तुति करते हुए वर्णन करते हैं कि देवी उन वेदों का निधान हैं जिनके पदों का पाठ **उद्गीथ** के कारण रम्य (मधुर) है (२३)।

यद्यपि पुराणों और इतिहास ग्रन्थों में **उद्गीथ** शब्द दुष्प्राप्य है तथापि कतिपय स्थानों पर ऊँचे स्वर में ॐ के जप या गान का वर्णन है। **महाभारत** में भीष्म विष्णु द्वारा नारद के सम्मुख विश्वरूप दर्शन का वर्णन करते हैं जिसमें नारद सैकड़ों मुख वाले विष्णु को एक मुख से ऊँचे स्वर में ॐ गाते हुए देखते हैं। इसी प्रकार **कूर्म पुराण** में शिव के सहस्रों सूर्यों के समान विश्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है जिसमें शिव को मुख से ऊँचे स्वर में **प्रणव** (ॐ) गाते हुए कहा गया है।

ॐ और सामवेदीय स्तोत्र के मध्य भाग का नाम होने के साथ-साथ गाने की क्रिया को भी **उद्गीथ** कहा जाता है। इस संदर्भ में सामवेद के गान को और विशेषतः उसके दूसरे अध्याय के गान को **उद्गीथ** कहा जाता है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण, महाभारत।

व्युत्पत्ति

उत् + √गै + थक् → उद्गीथा

उत् + √गै ► ऊँचे स्वर में जपना या गाना; थक् ► कर्म के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथ, निश्चित ही जो उद्गीथ है वह प्रणव है और जो प्रणव है वह उद्गीथ है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

ओंकार उद्गीथ नाम से जाना जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

मुख से उच्च स्वर में ओंकार गाते हुए [विष्णु को नारद ने देखा]।

—महाभारत में भीष्म का वर्णन

महान् प्रणव को उच्च स्वर में गाते हुए [शिव को]।

—कूर्म पुराण

(४४)

## उद्गीथ, सूर्यान्तर्गत

अर्थ

सूर्य के मध्य स्थित स्वर्णिम पुरुष।

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में **सूर्यान्तर्गत** (सूर्य के मध्य स्थित) ॐ का एक नाम है। इस नाम को इङ्गित करने वाली एक व्याख्या **छान्दोग्य उपनिषद्** में ॐ के **उद्गीथ** नाम के लिये प्राप्त होती है। ॐ की अधिदैवत (देवता संबन्धी) उपासना का वर्णन करते हुए उपनिषद् सूर्य के अन्दर दिखने वाले एक हिरण्यमय पुरुष का वर्णन करती है। इस पुरुष की स्वर्णिम (सुनहली) दाढ़ी है, सुनहले बाल हैं, और यह पैर के नाखुनों के छोर तक पूरा सुनहला है। इस पुरुष की आँखें खिले हुए कमलों के सामान हैं। उपनिषद् कहती है कि इस पुरुष का नाम उत् है क्योंकि यह सभी पापों से ऊपर उठ चुका है (उदित = उत्, ऊपर + इत, गया हुआ)। जो यह जानता है वह भी सभी पापों से ऊपर उठ जाता है। उपनिषद् आगे कहती है कि ऋग्वेद और सामवेद इस उत् का गुणगान करने वाले गीथ (गायक) हैं। इस कारण से इस पुरुष को **उद्गीथ** कहते हैं। यही कारण है कि जो उत् का गुणगान करता है वह उद्गाता कहलाता है। उद्गाता का अर्थ है सामवेद का गान करने वाला। यह उत् सूर्यलोक से परे लोकों का और देवों की कामनाओं का शासक है।

ईश उपनिषद् में भी सूर्य के अन्तर्गत पुरुष का उल्लेख है। यहाँ साधक सूर्यदेव से अपने तेज को समेटने की प्रार्थना करता है ताकि वह सूर्य का कल्याणतम रूप देख पाए। साधक फिर कहता है वह [सूर्य के अन्दर पुरुष] में (**सोऽहम्**), इसका अर्थ है कि जीवात्मा परमात्मा के सट्टा है क्योंकि जीव परब्रह्म का ही अंश है। जिस प्रकार **सिंहो माणवकः** का अर्थ है “बालक सिंह के समान है”, उसी प्रकार **सोऽहम्** का अर्थ है की जीव परब्रह्म के सामान है क्योंकि वह उसी का अंश है।

**राम स्तवराज स्तोत्र** में श्रीराम को **आदित्यमण्डलगत** (सूर्यमण्डल के भीतर स्थित) कहा गया है। इसी स्तोत्र में राम और ॐ का तादात्म्य भी प्रतिपादित है क्योंकि स्तोत्र में अन्यत्र राम को **प्रणव** कहा गया है (२०)। **वाल्मीकीय रामायण** में सुमित्रा राम का सूर्य के भी सूर्य कहकर वर्णन करती हैं। यहाँ भी श्रीराम के उपनिषदों में वर्णित सूर्य के भीतर स्थित हिरण्यमय पुरुष होने की ओर संकेत है।

ईश उपनिषद् पर अपने भाष्य में राघवेन्द्र स्वामी कहते हैं कि सूर्य शब्द का ही एक अर्थ है सूर्यान्तर्गत, अर्थात् सूर्य के भीतर स्थित परब्रह्म।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

उत् + गीथ → उद्गीथ; सूर्य + अन्तर्गत → सूर्यान्तर्गत।

उत् ► सूर्य के भीतर स्थित हिरण्यमय पुरुष; **गीथ** ► गायक, गान करनेवाला; **सूर्य** ► सूरज;  
**अन्तर्गत** ► भीतर स्थित (अन्दर गया हुआ)।

उद्धरण

अथ, जो यह सूर्य के भीतर हिरण्यमय पुरुष दिखता है, ... उसका उत् नाम है ... ऋग्वेद और सामवेद उसके गायक हैं, इसलिये वह उद्गीथ है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

ॐ **सूर्यान्तर्गत** और अन्य पर्यायों से जाना जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(४५)

## अक्षर

अर्थ

१ नाशरहित २ अस्रुत, अमर, कम्पनरहित ३ मोक्ष ४ वर्ण, उच्चारण की इकाई ५ वर्णाकृति, लेखन की इकाई ६ आत्मा ७ शिव ८ विष्णु ९ ब्रह्मा

व्याख्या

छान्दोग्य उपनिषद् और गीता में ॐ को **अक्षर** कहा गया है। **अक्षर** शब्द **क्षर** का विपरीतार्थक है। **क्षर** शब्द √क्षि धातु (नष्ट करना) अथवा √क्षर् धातु (संचलित होना, काँपना, पिघलना) से उत्पन्न है। निरुक्त और **महाभाष्य** के अनुसार **अक्षर** का शाब्दिक अर्थ है वह तत्त्व जो न तो अन्य द्वारा नष्ट किया जा सकता है और जो न ही स्वयं विचलित होता है (मरता है)। चूँकि ॐ शाश्वत है (देखें **ध्रुव**, पृ. ६०), यह नाशरहित और मरणरहित दोनों है। इस कारण से ॐ को **अक्षर** कहते हैं।

**अक्षर** शब्द के अनेक अन्य अर्थों की ॐ के साथ संगति होती है। **अमर कोश** के अनुसार **अक्षर** का अर्थ मोक्ष भी है। ॐ का एक नाम है **तार**, जिसका अर्थ भी मोक्ष है (८९)।

एक वर्ण को अर्थात् केवल एक स्वर वाली उच्चारण की इकाई को भी संस्कृत में **अक्षर** कहते हैं। यही कारण है कि **न-मः-शि-वा-य** को पञ्चाक्षर मन्त्र कहते हैं, क्योंकि इसमें पाँच अक्षर हैं। ॐ इस शब्द में केवल एक स्वर है, अतः ॐ एक अक्षर भी है। क्योंकि इसे परम अक्षर या अक्षरों में श्रेष्ठ मानते हैं, इसे गीता में प्रमुख अक्षर (**एकमक्षरम्**) कहा गया है (६४)।

**अक्षर** का एक और अर्थ है लिपि की इकाई, अथवा किसी वर्ण का लिखित चिह्न। 'ओम्' ऐसे लिखने में दो अक्षरों का प्रयोग होता है—स्वराक्षर ओ और व्यञ्जनाक्षर म्। परन्तु ओम् को 'ॐ' भी लिखा जाता है। चूँकि यह अपने आप में एक लिखित अक्षर या चिह्न भी है, ॐ **अक्षर** है।

गीता के १५वें अध्याय में कृष्ण शरीर के लिए **क्षर** और आत्मा के लिए **अक्षर** शब्द का प्रयोग करते हैं। ॐ के **नारायण** (७०) और **विभु** (१०६) नाम भी उसका आत्मा से संबन्ध बताते हैं।

**शब्द रत्नावली** कोश में **अक्षर** शब्द के अर्थों में शिव और विष्णु भी उल्लिखित हैं। ॐ का दोनों से तादात्म्य दर्शाया गया है—देखें **ओंकार** (२९) और **ध्रुवाक्षर** (६०)।

अन्ततः, **अक्षर** शब्द का अर्थ परब्रह्म भी है। ऋग्वेद और उपनिषदों में इस अर्थ में **अक्षर** का प्रयोग हुआ है। ॐ को भी परब्रह्म माना गया है (१९)।

परम्परा

उपनिषद्, गीता, व्याकरण, कोशा

व्युत्पत्ति

अ + क्षर → अक्षर

अ ► (न से) न, नहीं; क्षर ► जो नष्ट किया जाए या पिघल (मर) जाए।

उद्घरण

ॐ—इस अक्षर और उद्गीथ की उपासना करना चाहिये।

—छान्दोग्य उपनिषद्

वाणियों में मैं एक अक्षर (ॐ) हूँ।

—गीता

जो क्षर नहीं उसे अक्षर जानना चाहिये। जो न अन्य द्वारा नष्ट होता है या न [स्वयं] संचलित होता है वह अक्षर है।

—महाभाष्य

अक्षर का अर्थ है ॐ।

—अनेकार्थ कोश



(४६)

अक्षर

अर्थ

१ व्यापक २ भक्षक ३ जला

व्याख्या

क्षर का विपरीतार्थक होने के अतिरिक्त अक्षर शब्द को √अश् धातु और सर प्रत्यय से उणादि सूत्र और पाणिनीय व्याकरण के नियमों द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है।

√अश् धातु का अर्थ है व्याप्त करना। अतः अक्षर का अर्थ है व्यापक। ॐ के संदर्भ में इसे ब्रह्माण्ड का व्यापक समझा जा सकता है (देखें ओम्, पृ. १७)। अथवा, वाचस्पत्य कोश के अनुसार ॐ को अक्षर इसलिये कहते हैं क्योंकि वह वेदों को व्याप्त करता है—सत्य ही है क्योंकि वेदों के मन्त्र यज्ञों में ॐ से ही प्रारम्भ होते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णन है कि ॐ संपूर्ण वाणी को व्याप्त करता है (देखें पृ. ८८)—यह एक और अर्थ है।

एक अन्य धातु है √अश् जिसका अर्थ है खाना या भक्षण करना। यद्यपि इसके क्रियारूप भिन्न बनते हैं, तथापि अक्षर इस धातु से पहले की तरह ही उत्पन्न होता है। अतः अक्षर का एक अर्थ है भक्षण करने वाला। ॐ ही सबका आदि और अन्त है ऐसी मान्यता है। इसी कारण से ॐ को प्रलय भी कहते हैं (७६)। ॐ में सब कुछ विलीन हो जाता है, इसलिये ॐ ब्रह्माण्ड का भक्षक (संहारकर्ता) है।

अथवा, ॐ को काल भी समझा जा सकता है। काल भूत, वर्तमान, और भविष्य से परे है (त्रैकात्म्य, पृ. ३०)। गीता के १०वे अध्याय में कृष्ण अपनी तुलना ॐ से करते हैं। अगले ११वे अध्याय में वे कहते हैं कि वे लोकों का विनाश करने वाले प्रवृद्ध काल हैं जो यहाँ (युद्धभूमि में) लोगों का विनाश करने के लिए प्रवृत्त हुए हैं। अमेरीकी वैज्ञानिक जूलियस रॉबर्ट ओपेनहाइमर के अनुसार उन्हें जुलाई १६ १९४५ को प्रथम परमाणु विस्फोट के समय गीता की इसी पङ्क्ति का स्मरण हुआ था। ओपेनहाइमर ने इसका यह अनुवाद उद्धृत किया था—“अब मैं काल बन चुका हूँ, जो लोगों का नाश करता है।” अर्जुन कृष्ण के इस भक्षक रूप का सुचारु वर्णन करते हैं—“हे विष्णु! आप समग्र लोकों का चारों ओर से ज्वालामय मुखों द्वारा भक्षण करते हुए उन्हें बार-बार चाट रहे हैं। आपकी उग्र किरणें संपूर्ण जगत् (ब्रह्माण्ड) को तेज से संपूर्ण करती हुई उसे तपा रही हैं।”

ऋग्वेद में अक्षर शब्द जल के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसका कारण है कि जल एक स्थान से दूसरे स्थान को व्याप्त (प्राप्त) करता है। ॐ का एक नाम है रस (७८), जिसका अर्थ जल भी है। एक संध्या मन्त्र में ॐ को जल के देवता आपस् कहा गया है।

परम्परा

व्याकरण, भाष्य, कोश

व्युत्पत्ति

√अश् + सरन् → अक्षर

√अश् ► १ व्याप्त करना २ खाना, भक्षण करना; सरन् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथवा, √अश् धातु से सर प्रत्यय होने पर **अक्षर** ... जो व्याप्त करता है वह **अक्षर** है।

—महाभाष्य

जो व्याप्त करता है या भक्षण करता है वह **अक्षर** है।

—विष्णु सहस्रनाम पर सत्यभाष्य

**अक्षर** का अर्थ है ॐ।

—अनेकार्थ कोश

(४७)

स्वर

अर्थ

१ ध्वनि, शब्द २ वर्णमाला का स्वर, व्यञ्जनेतर अक्षर ३ संगीत का सुर

व्याख्या

उपनिषदों में ॐ को **स्वर** कहा गया है। **स्वर** शब्द √स्व् धातु (शब्द करना) से आता है। **स्वर** से तात्पर्य है किसी भी प्रकार की ध्वनि; नासिका द्वारा अन्दर या बाहर जाने वाली श्वास वायु को भी **स्वर** कहते हैं क्योंकि यह वायु भी शब्द करती है। विशेषतः ॐ को **स्वर** इसीलिये कहते हैं क्योंकि यह सर्वोत्कृष्ट शब्द या ध्वनि है (७७)। **महानारायण उपनिषद्** कहती है कि ॐ वेदों के आदि में उच्चारित स्वर है। इसी कारण से ॐ को **वेदादि** (१०३) भी कहा जाता है। **छान्दोग्य उपनिषद्** में ॐ को कई बार **स्वर** कहा गया है। उपनिषद् में इसका कारण भी दिया गया है —“जब व्यक्ति ऋग्वेद को प्राप्त करता है (सीखता है), तब आदरपूर्वक ॐ यह **स्वर** करता है। ऐसा ही सामवेद को प्राप्त कर और यजुर्वेद को प्राप्त कर करता है।”

**स्वर** का एक और अर्थ है वह वर्ण जिसका उच्चारण स्वतन्त्र है। इसके विपरीत व्यञ्जन का उच्चारण किसी-न-किसी स्वर के अधीन होता है। **स्कन्द पुराण** की पञ्चम संहिता में शिव के १०८ नामों पर एक टीका है **शिव तत्त्व रहस्या**। इस टीका के अनुसार ॐ को **स्वर** इसलिये कहते हैं क्योंकि यह अधिकांशतः स्वर ही है—इसमें स्वर भाग (ओ) की दो मात्राएँ हैं जबकि व्यञ्जन भाग (म्) की आधी ही मात्रा है।

भारतीय संगीत के सात सुरों को भी स्वर कहते हैं। **अमर कोश** के अनुसार इनके नाम हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद। ये सात स्वर क्रमशः मोर, गौओं, अजाविक (अजों और मेघों), क्रौञ्च, कोकिला, अश्व, और गज के प्राकृतिक स्वर हैं। **भागवत पुराण** में नारद की वीणा को स्वर ब्रह्म से विभूषित कहा गया है। टीकाओं के अनुसार इसका अर्थ है कि सातों स्वर ही ब्रह्म या ॐ हैं। ध्यातव्य है कि ॐ को **स्वर** कहने वाली **छान्दोग्य उपनिषद्** भारतीय शास्त्रीय संगीत के मूल सामवेद की उपनिषद् है। इस प्रकार **छान्दोग्य उपनिषद्** संगीत परम्परा की प्रतिनिधि भी है। इसके नाम में **छान्दोग्य** शब्द का अर्थ है छन्दों के गायकों की, जहाँ छन्द का तात्पर्य सामवेद से है।

परम्परा

उपनिषद्, भाष्या

व्युत्पत्ति

$\sqrt{\text{स्व}} + \text{अच्/घ} \rightarrow \text{स्वर}$

$\sqrt{\text{स्व}}$  ► स्वर करना, ध्वनि करना;  $\text{अच्}$  ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय;  $\text{घ}$  ► करण के अर्थ में प्रत्यय

उद्घरण

वह **स्वर** (ॐ) जो वेदों के आदि में उक्त है और जो वेदान्त में प्रतिष्ठित है ...।

—महानारायण उपनिषद्

जैसे कोई जल में मत्स्य को देख लेता है उस प्रकार मृत्यु ने वहाँ ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद में उनको देख लिया। यह जानकर वे ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद से ऊपर उठकर **स्वर** (ॐ) में ही प्रविष्ट हो गए।

—छान्दोग्य उपनिषद्

**स्वर** अर्थात् अच् (अ, आ, इ, ई, ... ओ, औ)। सामान्य शब्द का विशेष अर्थ में पर्यवसान (तात्पर्य) होने के कारण से वह यहाँ **प्रणव** रूप है।

—शिव तत्त्व रहस्य

(४८)

स्वर

अर्थ

१ स्वयं कान्तिमान्, अपने-आप चमकने वाला २ अपने में दूसरों को रमण कराने वाला ३ अपनों में रमने वाला ४ स्वयं को देने वाला।

व्याख्या

ॐ का नाम **स्वर** एक समास के रूप में अनेक विग्रहों सहित व्याख्यायित है। *महाभाष्य* और *संगीत सुधाकर* (*संगीत रत्नाकर* पर एक टीका) में **स्वर** शब्द को **स्व** (स्वतः, अपने आप) और  $\sqrt{\text{राज्}}$  धातु (चमकना, द्युतिमान् होना) से निष्पन्न कर उसका अर्थ स्वयं दीप्तिमान् बताया गया है। यद्यपि यहाँ प्रसंग क्रमशः व्याकरण में **स्वर** का और संगीत में शिव का है तथापि यह व्याख्या ॐ की भी है, क्योंकि ॐ अकृत या असृष्ट (*अद्वैत*, पृ. ५१) और दीप्तिमान् (*वैद्युत*, पृ. १०१) है।

*छान्दोग्य उपनिषद्* में ॐ के लिये प्रयुक्त **स्वर** शब्द को *राघवकृपा भाष्य* में इस लेखक के गुरुदेव जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य तीन और धातुओं से निष्पन्न करते हैं—

(१) ॐ **स्वर** है क्योंकि वह साधकों को स्वयं में रमाने वाला परब्रह्म है। इस प्रक्रिया में  $\sqrt{\text{रम्}}$  धातु (खेलना, रमण करना) का प्रयोग है। इसी धातु से *राम* शब्द भी बनता है, जिसका अर्थ है वह जो [भक्तों को] रमण कराता है। उपनिषदों में ॐ को राम और आनन्द दोनों कहा गया है (२१)।

(२) ॐ **स्वर** है क्योंकि वह अपनों में अर्थात् वेदों में रमण करता है। इस व्याख्या में **स्व** शब्द का निजी (अपना) अर्थ लिया गया है। वेदों को ॐ का शरीर या सार माना गया है (१०५), अतः वेद ॐ के अपने हैं और उनकी वाणी में ॐ रमण करता है।

(३) ॐ **स्वर** है क्योंकि वह अपने-आप को देने वाला परब्रह्म है। यह व्याख्या  $\sqrt{\text{रा}}$  धातु (देना) से **स्वर** शब्द की निष्पत्ति करती है और *मुण्डक उपनिषद्* के उस वाक्य की ओर संकेत करती है जिसमें कहा गया है कि परब्रह्म उसी के द्वारा लभ्य है जिसका वरण वह स्वयं करता है (१५)।

परम्परा

व्याकरण, संगीतशास्त्र, उपनिषद् भाष्या

व्युत्पत्ति

स्व +  $\sqrt{\text{राज्}}$  + उ → स्वर; स्व +  $\sqrt{\text{रम्}}$  + णिच् + उ → स्वर; स्व +  $\sqrt{\text{रम्}}$  + उ → स्वर;  
अथवा स्व +  $\sqrt{\text{रा}}$  + उ → स्वर।

स्व ► १ स्वयं २ अपना, निजी; √राज् ► चमकना, दीप्तिमान् होना; उ ► कर्ता अर्थ में प्रत्यय।  
√रम् ► क्रीडा करना, खेलना, रमण करना; गिच् ► प्रेरणार्थक प्रत्यय। √दा ► देना, दान करना।

उद्धरण

वे (देवता) स्वर (ॐ) में ही प्रविष्ट हो गये।

—छान्दोग्य उपनिषद्

जो स्वयं चमकते हैं, वे स्वर हैं।

—महाभाष्य

योऽयं स्वयं राजते (“जो स्वयं दीप्तिमान् है”) अन्य की अपेक्षा न करते हुए आनन्दकारी होने से।  
स्वर शब्द की निरुक्ति भी इससे कही गयी है।

—संगीत रत्नाकर पर टीका

स्वर में, अर्थात् जो स्वयं दीप्तिमान् है उसमें ... स्व अर्थात् परमेश्वर में रमण कराता है वह स्वर है  
... अपनों में अर्थात् वेदों में जो रमण करता है वह स्वर है ... स्व अर्थात् परमेश्वर को जो देता है  
वह स्वर है।

—छान्दोग्य उपनिषद् पर राघवकृपा भाष्य

(४९)

## आदिबीज

अर्थ

१ प्रथम बीज २ प्रथम बीजाक्षर ३ मूल कारण ४ परम कारण, सभी कारणों का कारण।

व्याख्या

तन्त्र परम्परा में ॐ का एक नाम है **आदिबीज** (प्रथम कारण)। *गोपथ ब्राह्मण* में प्रजापति द्वारा ॐ की मात्राओं से ब्रह्माण्ड की सृष्टि का वर्णन आता है (देखें *ओम्*, पृ. ८)। इस कारण से ॐ को सृष्टि का प्रथम बीज माना जाता है।

बीज शब्द का एक और अर्थ है किसी मन्त्र में प्रयुक्त बीज अक्षर। किसी मन्त्र में या स्वतन्त्र रूप से जपे जाने वाले गुह्य अक्षर को बीज अक्षर कहते हैं। उदाहरणतः औपनिषद् षडक्षर मन्त्र **रं रामाय नमः** में **रं** यह वर्ण अग्नि का प्रतिनिधि बीज अक्षर है। ॐ अनादिकाल से अनेक मन्त्रों का बीजाक्षर होने के कारण **आदिबीज** है—प्रथम और प्रमुख बीजाक्षर।

बीज का एक अर्थ कारण भी है। ॐ प्रकृति (ब्रह्माण्ड) का मूल कारण है। सब कुछ ॐ से निःसृत है और ॐ में ही लीन होता है ऐसी मान्यता है (देखें *प्लय*, पृ. ७६)। गीता में कृष्ण कहते हैं कि वे अपर और पर प्रकृति (भौतिक जगत् और जीव जिनसे सब भूत उत्पन्न हैं) के स्रोत हैं, जगत् के कारण (*प्रभव*) हैं, और सब भूतों के बीज हैं। इसी संदर्भ में कृष्ण अपने को सब वेदों में **प्रणव** कहते हैं। अथवा, **आदि** का अर्थ है प्रकृति—सबका कारण—और प्रकृति का नियन्ता (नियामक) या कारण है ॐ। ॐ को प्रकृति को पार करने के लिये नाव बताया गया है (३२)।

इसके अतिरिक्त **आदि** शब्द का अर्थ कारण भी है। **आदि** और **बीज** दोनों शब्दों का कारण अर्थ लेने पर **आदिबीज** का एक और अर्थ प्राप्त होता है—सभी कारणों का कारण अथवा परम कारण। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जगत् के कारण हैं और ब्रह्मा रूपी प्रथम ध्वनि अकार वाला ॐ ब्रह्मा का भी कारण है (देखें *ओम्*, पृ. १)।

*भागवत पुराण* में विष्णु के लिये **आदिबीज** शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। एक बार हाथियों के राजा गजेन्द्र द्वारा की गयी स्तुति में और एक बार भूमि द्वारा की गयी प्रार्थना में। अनेक स्थानों पर विष्णु का ॐ से तादात्म्य दिखाया गया है (१०७), और विष्णु और ॐ के बहुत सारे नाम समान हैं।

गीता पर *ज्ञानेश्वरी* नामक मराठी टीका के प्रारम्भ में ॐ के लिये **आदिबीज** शब्द का प्रयोग हुआ है। *ज्ञानेश्वरी* के अनुसार ॐ गणेश ही है। ॐ का अकार गणेश का चरण-युगल है, उकार गणेश का विशाल उदर है, और मकार गणेश का मस्तकाकार महामण्डल है।

परम्परा

तन्त्र, भाष्य।

व्युत्पत्ति

आदि + बीज → आदिबीज।

**आदि** ► १ प्रथम २ मूल, मौलिक; **बीज** ► १ अङ्कुर, बीज २ किसी मन्त्र का बीज अक्षर ३ कारण।

उद्धरण

ओंकार **आदिबीज** कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

ये तीन—अकार, उकार, मकार—जहाँ एक होते हैं वहाँ शब्दब्रह्म (अथवा वेद) व्याप्त होता है।  
गुरुकृपा से मैं उस **आदिबीज** (ॐ) को नमन करता हूँ।

—ज्ञानेश्वरी



(५०)

## आदित्य

अर्थ

१ सूर्य, सूर्यदेव २ पृथ्वी का अधिपति ३ वाणी का सार ४ गौ (गोमाता) का मन्त्र

व्याख्या

वैदिक ग्रन्थों में ॐ को **आदित्य** या सूर्य कहा गया है। स्मृति और तन्त्र शास्त्रों के अनुसार **आदित्य** भी ॐ का एक नाम है। *जैमिनीय ब्राह्मण* में ॐ को सूर्य बताया गया है। *छान्दोग्य उपनिषद्* में कहा गया है कि सूर्य ॐ है क्योंकि यह ॐ ऐसा स्वर करता हुआ गमन करता है।

**आदित्य** का शाब्दिक अर्थ है अदिति का पुत्र। अदिति देवों की माता का नाम है। *दिति* और *अदिति* दोनों नाम √दो धातु (काटना, खण्ड-खण्ड करना, नष्ट करना) से आये हैं। काटने की क्रिया को दिति कहते हैं और उसका विपरीतार्थक है *अदिति*। दिति के पुत्र विनाशकारी दैत्य हैं और अदिति के पुत्र स्वनात्मक तथा अमर आदित्य (देव) हैं। यद्यपि **आदित्य** शब्द से सभी देवता अभिप्रेत हैं, तथापि विशेष रूप से आदित्य शब्द सूर्य देव का वाचक है। सूर्य की उपासना करने वाला सौर संप्रदाय पाँच पौराणिक संप्रदायों (सौर, शैव, वैष्णव, शाक्त, और गाणपत) में से एक है। सौर संप्रदाय में सूर्य ही परब्रह्म हैं। गुप्त साम्राज्य के समय और मध्यकालीन भारत में सौर संप्रदाय लोकप्रिय था। मध्यकाल में ही मोढेर और कोणार्क के भव्य सूर्य मन्दिरों का निर्माण हुआ था। हालाँकि यह संप्रदाय आधुनिक समय में लुप्तप्राय है, सूर्य की पूजा पूर्वी भारत और नेपाल में छठ आदि उत्सवों में आज भी होती है।

*अदिति* शब्द का अर्थ है जिसे बाँटा, मारा, या काटा न जा सके। *निघण्टु* कोश के अनुसार वेदों में *अदिति* शब्द पृथ्वी, वाणी, और गाय के लिये प्रयुक्त हुआ है। पृथ्वी अविभाजित है (उसे बाँटा नहीं जा सकता), वाणी अमर है; और गौ की हत्या निषिद्ध है—अतः तीनों के लिये *अदिति* शब्द अन्वर्थ है। इस प्रकार **आदित्य** शब्द का अर्थ है पृथ्वी-संबन्धी, वाणी-संबन्धी, या गो-संबन्धी। इसी कारण से *विष्णु सहस्रनाम* में **आदित्य** नाम का आदि शंकर ने अपने भाष्य में “पृथ्वी का स्वामी” ऐसा अर्थ किया गया है। ॐ के नाम के रूप में **आदित्य** के अर्थ हैं—(१) पृथ्वी का अधिपति, ॐ पृथ्वी को व्याप्त करता है (१०८); (२) वाणी का सार, ॐ रस (७८) और वेदात्मा (१०७) कहा जाता है; और (३) गोमाता का मन्त्र, गोमाता के १,००० नाम वाले *गोसहस्रनाम* नामक स्तोत्र में गाय को *प्रणवेड्या* (ॐ के द्वारा स्तुत्य) कहा गया है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

अदिति + ण्य → आदित्य।

**अदिति** ► १ सूर्य सहित देवों की माता अदिति २ पृथ्वी ३ वाणी ४ गौ, गाय; **ण्य** ► अपत्य (संतान)  
या “यह उसका है” इस अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

निश्चय ही, वह आदित्य यह अक्षर (ॐ) है।

—जैमिनीय ब्राह्मण

वह **आदित्य उद्गीथ** है, यह **प्रणव** है, यह ॐ ऐसा स्वर करता हुआ [आकाश में] गमन करता है ...  
**आदित्य उद्गीथ** है।

—छान्दोग्य और मैत्री उपनिषद्

**ओंकार आदित्य** कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति, लक्ष्मी तन्त्र

(५१)

अद्वैत

अर्थ

१ द्वितीयरहित, अविभाजित, एकमात्र २ जो दो प्रकृतियों से नहीं आया हो।

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थ प्राणतोषिणी के अनुसार ॐ का एक नाम है **अद्वैत**। **द्वैत** शब्द का अर्थ है वह जो द्विधा भेद प्राप्त है। **अद्वैत** का अर्थ है जो **द्वैत** नहीं है अर्थात् जो द्वितीयरहित है या एकमात्र है। ॐ **अद्वैत** है क्योंकि यह **एकाक्षर** है (६४)—इसका उच्चारण घटक ध्वनियों में विभाजन के बिना ही होता है। यद्वा, ब्रह्म (१९) होने के कारण ॐ एकमात्र परम देवता है।

रामस्तवराज स्तोत्र में श्रीराम को **अद्वैत** कहा गया है। राघवकृपा भाष्य में इसका अर्थ ऐसे बताया गया है—**द्वैत** का अर्थ है वह जो ‘दो से’ (द्वि) ‘आया’ (इत) हो, अर्थात् जो माता और पिता से उत्पन्न हुआ हो। **द्वैत** और **द्वैत** शब्द समानार्थक हैं। **द्वैत** का विपरीत है **अद्वैत**, जिसका अर्थ है वह जो माता और पिता के बिना उत्पन्न हुआ हो, अर्थात् वह जिसका जन्म दिव्य हो। यदि हम द्वि से दो प्रकृति—अपर और पर—ऐसा अर्थ लें तो ॐ को भी **अद्वैत** माना जा सकता है। गीता के सातवें अध्याय में श्रीकृष्ण कहते हैं कि अष्टधा भौतिक प्रकृति और जीवभूत चेतन प्रकृति उनकी दो प्रकृतियाँ हैं। ये प्रकृतियाँ सभी भूतों (प्राणियों) की योनि हैं, जबकि कृष्ण स्वयं सारे जगत् के प्रभव (स्रोत) और प्रलय हैं। कृष्ण या ॐ के रूप में परब्रह्म **अद्वैत** है क्योंकि वह अपर और पर प्रकृति से उत्पन्न नहीं हैं। इसके विपरीत ब्रह्म इन दो प्रकृतियों का मूल स्रोत या कारण है।

कूर्म पुराण में व्यास ॐ को **अद्वैत** कहते हैं और शिव से उसका तादात्म्य स्थापित करते हैं। व्यास शिव का वर्णन करते हुए कहते हैं—“ये देव महादेव केवल और परम शिव हैं। यही वह **अद्वैत अक्षर** (ॐ) हैं और वह सूर्य के अन्तर्गत परब्रह्म भी हैं।” जिस प्रकार यहाँ शिव को वर्णित किया गया है, उसी प्रकार ॐ को भी परब्रह्म (१९) और **आदित्य** के भीतर स्थित पुरुष (**सूर्यान्तर्गत**, पृ. ४४) कहा गया है।

गरुड पुराण में सूत शौनक को एक सुन्दर स्तोत्र सुनाते हैं जो मूलतः सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने नरद को सुनाया था। इस विष्णुपरक स्तोत्र का नाम है **अव्युत स्तोत्र**। इस स्तोत्र में विष्णु को दो बार **अद्वैत** कहा गया है—एक बार **परम अद्वैत** और एक बार **अक्षय अद्वैत**।

परम्परा

पुराण, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

अ + द्वैत → अद्वैत।

अ ► (न) नहीं; द्वैत ► १ दो में विभाजित २ दो से उत्पन्ना।

उद्धरण

ओंकार को अद्वैत कहते हैं।

—प्राणतोषिणी

(५२)

## अनादि

अर्थ

१ आदिरहित, प्रारम्भरहित, अजन्मा २ कारणरहित, असृष्ट, स्रोतरहित ३ अग्राह्य, अचिन्त्य  
४ प्राण का स्रोत।

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थ प्राणतोषिणी में ॐ को एक नाम **अनादि** बताया गया है। **आदि** का अर्थ है प्रारम्भ अथवा कारण या मूल। अतः **अनादि** का अर्थ है “वह जिसका किसी काल में प्रारम्भ न हो” (अर्थात् अजन्मा) और “जिसका कोई कारण न हो” (अर्थात् असृष्ट)। **ध्रुव** अर्थात् नित्य (६०) और **कालातीत** (९०) होने के कारण ॐ प्रारम्भ से रहित है। पतञ्जलि के योग सूत्र पर व्यास भाष्य कहता है कि वाच्य का वाचक के साथ सम्बन्ध स्थित (नित्य) है। ब्रह्म वाच्य है और ॐ वाचक है। तात्पर्य यह है कि वाचक ॐ, वाच्य ब्रह्म, और उनका संबन्ध—तीनों नित्य हैं, अर्थात् तीनों अनादि हैं।

अथर्वशिर उपनिषद् में ॐ को अज (“अजन्मा”) कहा गया है (६३)। इस प्रकार भी ॐ **अनादि** है—कारण या मूल से रहित है।

आ + √दा (“लेना”, “ग्रहण करना”) धातु से उत्पन्न आदि शब्द का शाब्दिक अर्थ है वह जिसे ग्रहण किया जा सके। जिसे ग्रहण करना या समझना असंभव है, वह **अनादि** है। यह व्याख्या विष्णु सहस्रनाम के **अनादि** नाम पर सत्यभाष्य में उपलब्ध है। यही व्याख्या ॐ के साथ भी संगत है। माण्डूक्य उपनिषद् में परब्रह्म को अग्राह्य (“जिसे समझा न जा सके”) और अचिन्त्य (“जिसका चिन्तन न किया जा सके”) कहा गया है। इसी उपनिषद् में ॐ को परब्रह्म बताया गया है।

**अनादि** शब्द का **अन** + **आदि** ऐसा विग्रह भी संभव है। छान्दोग्य उपनिषद् में **अन** शब्द प्राण के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसका मूल है √अन् धातु (“सँस लेना”) जिससे पाँचों प्राणशक्तियों (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान) के नाम उत्पन्न हैं। **अन** का अर्थ प्राण और **आदि** का अर्थ कारण या स्रोत लेने पर **अनादि** का अर्थ निकलता है “प्राण का स्रोत”। कतिपय ग्रन्थों में ॐ को प्राणों का स्रोत कहा गया है। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में ॐ को वेदों, देवों, शरीर, वाणी, और मन के लिये प्राण देनेवाला कहा गया है (३६)। अथर्वशिखा उपनिषद् में वर्णन आता है कि संहारकाल में प्राणों का भक्षण कर उनसे एकीभूत होकर ॐ सृष्टि के समय उनका विसर्जन करता है पृ. ६३)।

गीता में कृष्ण कहते हैं कि अनादि और निर्गुण होने के कारण यह परमात्मा अव्यय है। इसे ॐ का वर्णन भी समझा जा सकता है। ॐ को परब्रह्म माना जाता है (१९); उसे **परम** भी कहा जाता है।

(७३); और अव्यय (७४), अनादि, और निर्गुण (११) उसी के नाम हैं।

महाभारत में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं कि वाक् (वैदिक वाणी) अनादिनिधन है, अर्थात् आदि और अन्त से रहित है। वाणी का सार (७८) होने के कारण ॐ भी आदि और अन्त से रहित है। अनादिनिधन शब्द वाक्यपदीय का प्रथम शब्द है, जिसका प्रारम्भ शब्दब्रह्म के वर्णन से ही हुआ है (देखें पृ. ८७)।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

अन् + आदि → अनादि; अन + आदि → अनादि।

अन् ► (न से) न, नहीं; आदि ► १ प्रारम्भ २ कारण, मूल। अन ► प्राण, प्राणशक्ति।

उद्धरण

ओंकार अनादि कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

(५३)

## अनन्त

अर्थ

१ अन्तरहित, असीमित २ विष्णु ३ शेष ४ बलराम ५ आकाश

व्याख्या

उपनिषद् और स्मृति ग्रन्थों के अनुसार **अनन्त** ॐ का एक नाम है। **अनन्त** शब्द **न** (नहीं) + **अन्त** (समाप्ति) से बनता है। संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार समास के पूर्वपद में स्वरवर्ण के परे होने पर **न** को **अन्** आदेश होता है। यह ग्रीक भाषा के *av* (*an-*) उपसर्ग की तरह है जिससे अंग्रेज़ी के *amoral* आदि शब्दों का *a-* उपसर्ग आया है। अंग्रेज़ी के *anarchy* सहस्र कुछ शब्दों में पूरा *an-* उपसर्ग दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेज़ी का *end* शब्द संस्कृत के **अन्त** शब्द से संबद्ध है ऐसी मान्यता है।

**अनन्त** शब्द का प्राथमिक अर्थ है “अन्त से रहित” अथवा असीमित। वैदिक ग्रन्थों में अनेक बार **अनन्त** शब्द का प्रयोग हुआ है। उपनिषद् और स्मृति ग्रन्थों के अनुसार ॐ को **अनन्त** इसलिये कहते हैं क्योंकि ऋषिगण, देवगण, और मनुष्यगण द्वारा उसका अन्त कभी प्राप्त नहीं किया जाता।

ॐ को विष्णु माना गया है (१०७), और विष्णु को **विष्णुसहस्रनाम** में दो बार **अनन्त** कहा गया है। इसी स्तोत्र में विष्णु के चार और नाम **अनन्त** से प्रारम्भ होते हैं—**अनन्तजित्** (अनन्त लोकों के विजेता), **अनन्तात्मा** (अन्तरहित आत्मा), **अनन्तरूप** (असंख्य रूपों वाले), और **अनन्तश्री** (असीमित शक्तियों वाले)।

**अमर कोश** के अनुसार नागों के स्वामी शेषनाग का भी एक नाम **अनन्त** है। **विष्णु पुराण** में ऋषि पराशर मैत्रेय से कहते हैं कि शेषनाग के बल, प्रभाव, स्वरूप (प्रकृति), और रूप का देवता भी वर्णन नहीं कर सकते और न ही उन्हें वे जान सकते हैं। पराशर कहते हैं कि चूँकि गन्धर्व, अप्सराएँ, सिद्ध, किन्नर, नाग, और चारण—कोई भी शेष के गुणों का अन्त नहीं पा सकता है इसलिये शेष को **अनन्त** कहते हैं।

कृष्ण के अग्रज बलराम को भी **अनन्त** कहते हैं क्योंकि **महाभारत** और **भागवत पुराण** के अनुसार ये शेष के अवतार हैं। बलराम की स्वतन्त्र उपासना भारत के कई भागों में होती रही है। चाणक्य के **अर्थशास्त्र** में संकर्षण (बलराम) के उपासकों का (**संकर्षणदैवतीयों** का) उल्लेख है। भास के नाटक **स्वप्नवासवदत्त** का प्रारम्भ बलराम की स्तुति से होता है।

**अमर कोश** के अनुसार **अनन्त** का एक अर्थ आकाश भी है। शुक्ल यजुर्वेद की **वाजसनेयी**

माध्यन्दिन संहिता में परब्रह्म ॐ की **अनन्त** आकाश से तुलना की गयी है (१९)। ब्रह्म सूत्र में आकाश शब्द ब्रह्म के लिये प्रयुक्त हुआ है और ॐ भी ब्रह्म का नाम है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

**अन् + अन्त → अनन्त।**

**अन्** ► (न से) न, नहीं; **अन्त** ► समाप्ति, छोर।

उद्घरण

वह **अनन्त** स्थान पर ले जाता है और उसका अन्त ऋषियों, देवों, और मनुष्यों में से किसी के भी द्वारा प्राप्त नहीं होता है, इसलिये ॐ को **अनन्त** कहते हैं।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

अथ, उसे **अनन्त** क्यों कहते हैं? क्योंकि उसका उत्त्वारण करने मात्र पर सीधे, ऊपर, या नीचे (छहों दिशाओं में) उसका अन्त प्राप्त नहीं होता इसलिये उसे **अनन्त** कहते हैं।

—अथर्वशिर उपनिषद्



(५४)

## अव्यय

अर्थ

१ शाश्वत रूप वाला, जिस शब्द का रूप एक ही है २ अमर, अजर, अस्त्रुत ३ अक्षय, अन्तरहिता

व्याख्या

संस्कृत भाषा में अधिकांश संज्ञा, सर्वनाम, और विशेषण शब्दों के रूप लिङ्ग, वचन, और संख्या के अनुसार बदलते हैं। उदाहरणार्थ *मित्र* शब्द सूर्य के अर्थ में *मित्रः* अर्थात् पुल्लिङ्ग होता है, लक्ष्मण की माता सुमित्रा के अर्थ में *मित्रा* अर्थात् स्त्रीलिङ्ग होता है, और सुहृद् या हितैषी के अर्थ में *मित्रम्* अर्थात् नपुंसकलिङ्ग होता है। तीनों लिङ्गों में विभक्ति (प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, या सप्तमी) और वचन (एकवचन, द्विवचन, या बहुवचन) के अनुसार शब्दों के भिन्न-भिन्न रूप बनते हैं। जिन शब्दों का सभी लिङ्गों, विभक्तियों, और वचनों में एक ही रूप रहता है उन्हें व्याकरण में *अव्यय* कहते हैं।

गोपथ ब्राह्मण और तान्त्रिक ग्रन्थ बीजवर्णाभिधान के अनुसार ॐ का एक नाम है *अव्यय*। ब्राह्मण के अनुसार इसका कारण यह है कि ॐ सभी लिङ्गों, विभक्तियों, और वचनों में एक समान रहता है। यही कारण है कि *मुग्धबोध व्याकरण* के प्रथम वाक्य ॐ नमः शिवाय के दुर्गादास ने दो अर्थ दिये हैं—“शिव को नमस्कार है” और “शिव (कल्याण) के लिये ॐ को नमस्कार है”। इन दो अर्थों में ॐ को क्रमशः प्रथमा एकवचन और चतुर्थी एकवचन में स्वीकार किया गया है। यद्यपि संस्कृत में अनेक अव्यय शब्द हैं, ॐ उनमें सर्वश्रेष्ठ है और अकेला है जिसका विशेषतः नाम ही *अव्यय* है।

*अव्यय* शब्द का एक और अर्थ है अस्त्रुत या अजर-अमर। ॐ के विषय में मान्यता है कि ॐ न तो स्वयं क्षरित होता है और न किसी अन्य के द्वारा नष्ट होता है, अतः इसे *अव्यय* कहते हैं। *अक्षर* (४७), *अनादि* (७२), *अनन्त* (७३), *ध्रुव* (६०), और *प्रलय* (७६) नामों में भी यह भाव व्यञ्जित है।

चूँकि व्यय शब्द का एक अर्थ धन का प्रयोग या उत्सर्ग (खर्च) भी है, इसलिये *अव्यय* का अर्थ है “जिसका खर्च नहीं होता” अर्थात् अक्षय। ॐ को नित्य नवीन ज्ञान का दाता माना जाता है (३७)। इस प्रकार ॐ परमज्ञान का प्रतीक है। ॐ का नाम *सर्वविद्* भी है, जिसका एक अर्थ है “पूर्ण ज्ञान” (८१)। ज्ञान को भारतीय संस्कृति में अक्षय निधि माना गया है। संस्कृत में एक सुभाषित के अनुसार ज्ञान या विद्या का कोश व्यय करने पर सदैव वृद्धि प्राप्त करता है।

*विष्णु सहस्रनाम* में *अव्यय* के साथ-साथ *अव्यय निधि* (अर्थात् अक्षय कोश) और *अव्यय बीज* (अर्थात् अक्षय बीज या अनन्त बीज) *विष्णु* के नाम हैं।

परम्परा

वेद, तन्त्र, व्याकरणा

व्युत्पत्ति

**अ + व्यय → अव्यय।**

**अ** ► (न से) न, नहीं; **व्यय** ► १ रूप परिवर्तन (शब्द का) २ क्षरण, स्राव, नाश ३ धन का विसर्जन, खर्च।

उद्धरण

अव्ययीभूत ॐ अन्वर्थवाचक शब्द है। इसका कभी व्यय (रूपपरिवर्तन) नहीं होता। तीनों लिङ्गों में, सभी विभक्तियों में, और सभी वचनों में जो सदृश है और जिसका व्यय नहीं होता, वह **अव्यय** है।

—गोपथ ब्राह्मण

**ओंकार अव्यय** कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान

(५५)

## भवनाशन

अर्थ

१ संसार (सांसारिक भाव) का नाशकर्ता २ सांसारिक भाव का भक्षण करने वाला

व्याख्या

तान्त्रिक ग्रन्थ प्राणतोषिणी के अनुसार **भवनाशन** ॐ का नाम है। यह नाम **भव** और **नाशन** इन दो शब्दों का समास है। प्रथम शब्द **भव** √भू (“होना”) धातु से उत्पन्न है। यह धातु पाणिनीय धातुपाठ की २,००० धातुओं में प्रथम है। दूसरा शब्द **नाशन** √नश् धातु (“अदृश्य होना”, “तिरोहित होना”) का णिजन्त (प्रेरणार्थक) रूप है। **नष्ट** और **नश्वर** शब्द भी इसी धातु से उत्पन्न हैं। **भवनाशन** का अर्थ है **भव** (संसार या सांसारिक भाव) को नष्ट करने वाला। ॐ मुक्ति का साधन है (८९) और सांसारिक सागर से पार ले जानेवाला है (३२), अतः यह संसार का नाश करनेवाला है।

अथवा, **भवनाशन** समास का **भवन** + **अशन** ऐसा विग्रह भी सम्भव है। इस प्रकार का समास-विग्रह करने पर इस नाम का अर्थ है “सांसारिक भाव का भक्षण करने वाला”। यहाँ **भव** की तरह √भू धातु से उत्पन्न **भवन** शब्द का वही अर्थ है जो उपर्युक्त विग्रह में **भव** शब्द का है। **अशन** शब्द √अश् धातु (“भोजन करना”) से है, जिसका उल्लेख √अश् (“व्याप्त करना”) के साथ ॐ के नाम **अक्षर** (४६) की व्युत्पत्ति में हो चुका है। **अशन** का अर्थ भोजन (भोज्य पदार्थ) भी है और भोजन की क्रिया भी। इसका विपरीतार्थक शब्द है **अनशन** (“भोजन न करना”), जो “आमरण अनशन” जैसे आधुनिक प्रयोगों में प्रयुक्त होता है। एतावता, **भवनाशन** एक बहुव्रीहि समास है जिसका अर्थ है “वह जिसके द्वारा संसार का भोजन होता है” (**भवनस्य अशनं येन**) अथवा “वह जिसका भोज्य संसार है” (**भवनम् अशनम् यस्य**)। दोनों विग्रहों का तात्पर्य है सांसारिक भाव का भक्षण करने वाला।

गरुड पुराण स्थित विष्णु सहस्रनाम में **भवनाशन** विष्णु का एक नाम है। लिङ्ग पुराण में शिव को भी **भवनाशन** कहा गया है। इस नाम का स्त्रीलिङ्ग रूप है **भवनाशिनी**, जो **ललिता सहस्रनाम** में ललिता देवी का नाम है और पुराणों में सरयू नदी का नाम है।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

**भव + नाशन → भवनाशन; अथवा भवन + अशन → भवनाशन**

**भव** ► संसार, सांसारिक भाव; **नाशन** ► नाशकर्ता। **भवन** ► जन्म, सांसारिक भाव; **अशन** ►  
१ भोजन की क्रिया २ भोज्य पदार्थ।

उद्धरण

**ओंकार भवनाशन** कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

(५६)

## बिन्दुशक्ति

अर्थ

१ बिन्दु या सूक्ष्म केन्द्र के रूप में शक्ति २ वह जिसकी शक्ति बिन्दु में है ३ आपस् (जल) ४ भौंहों के मध्य स्थित शक्ति।

व्याख्या

तान्त्रिक सृष्टिक्रम में बिन्दु नाम है उस शक्ति से संपूर्ण अत्यन्त सूक्ष्म केन्द्र का जिससे ब्रह्माण्ड प्रकट होता है। यह वर्णन *प्रपञ्चसार तन्त्र* में मिलता है। तान्त्रिक ग्रन्थों में बिन्दु का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन है। सामान्यतः बिन्दु का अर्थ है एक छोटी बूँद। यह शब्द अथर्ववेद में भी प्राप्त है जहाँ यह सूर्य और सृष्टिक्रम में दो बूँदों—ब्रह्म से निःसृत बिन्दु और समुद्र से ऊपर उठनेवाले सुनहले बिन्दु—के लिये प्रयुक्त हुआ है।

*बीजवर्णाभिधान* और *प्राणतोषिणी* इन तान्त्रिक ग्रन्थों में ॐ का **बिन्दुशक्ति** नाम उल्लिखित है। व्याकरण की दृष्टि से **बिन्दुशक्ति** के अनेक समास-विग्रह और अर्थ संभव हैं। यदि इसे रूपक कर्मधारय समास माने तो इसका अर्थ है बिन्दु के रूप में शक्ति। *प्रपञ्चसार तन्त्र* में वर्णन आता है कि सृष्टिक्रम में सर्वप्रथम प्रकृति एक घनीभूत बिन्दु के रूप में प्रकट होती है। बिन्दु के भेदन पर शब्दब्रह्म नामक अव्यक्त स्वर (शब्द) प्रकट होता है। शब्दब्रह्म का बहुत ॐ से तादात्म्य कहा गया है (३८)। यह शब्दब्रह्म या ॐ शक्ति से पूर्ण बिन्दु में निहित होता है।

यद्वा, **बिन्दुशक्ति** एक बहुव्रीहि समास है जिसका अर्थ है “वह जिसकी शक्ति बिन्दु में है”। ॐ वेदों का प्रतिनिधित्व करता है (४)। *गोपथ ब्राह्मण* के अनुसार वेद अमरत्व प्रदान करने वाले सोम (अमृत) की बिन्दुओं से युक्त हैं। अतः वेदों के रूप में ॐ **बिन्दुशक्ति** है, क्योंकि उसकी अमरत्व प्रदान करने वाली शक्ति वेदों में स्थित सोम के बिन्दुओं में है।

यद्वा, षष्ठी तत्पुरुष समास मानने पर **बिन्दुशक्ति** का अर्थ है “बिन्दु की शक्ति”। *अमर कोश* के अनुसार बिन्दु का अर्थ है जल की बूँद। अतः बिन्दु की शक्ति आपस् अर्थात् जलाभिमानि देवता हैं। एक संध्या मन्त्र में ॐ को आपस् कहा गया है (७८)। ॐ का एक नाम **अक्षर** भी है (४७), जिसका एक अर्थ है जला।

अन्ततः, सप्तमी तत्पुरुष समास मानने पर बिन्दु शक्ति का अर्थ है बिन्दु में स्थित शक्ति। *मेदिनी कोश* के अनुसार बिन्दु का एक अर्थ है भौंहों के बीच का भाग। *योगी याज्ञवल्क्य स्मृति* और *घेरण्ड संहिता* में ॐ को भ्रुवों के बीच की ज्योति या तेज बताया गया है (१०१)। इसके अतिरिक्त ॐ का एक नाम **विभ्रु** भी है, जिसका अर्थ है सर्वशक्तिमान् (१०६)। इस प्रकार ॐ बिन्दु में अर्थात् भ्रुवों के बीच में स्थित शक्ति है।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

**बिन्दु + शक्ति → बिन्दुशक्ति**

**बिन्दु** ► १ सूक्ष्म केन्द्र, अल्प अंश २ जल का कण, पानी की बूँद ३ भ्रुवों के बीच का स्थान;  
**शक्ति** ► सामर्थ्य, बल, ऊर्जा

उद्धरण

**ओंकार बिन्दुशक्ति** कहलाता है।

—तान्त्रिक ग्रन्थ

(५७)

## ब्रह्म, परब्रह्म

अर्थ

१ [परम और] बढ़ने वाला २ [परम और] दूसरों को बढ़ानेवाला ३ [परम] ब्रह्म ४ बढ़ते गुणों का [परम] निधान

व्याख्या

अथर्वशिर उपनिषद् में ॐ के अनेक नामों में एक है परं ब्रह्मा समास होने पर यह नाम परब्रह्म हो जाता है। उपनिषद् कहती है कि ॐ पर है क्योंकि वह पर, अपर, और परायण है। टीपिका टीका के अनुसार इन शब्दों के अर्थ क्रमशः सगुण, निर्गुण, और परमगति हैं। उपनिषद् आगे कहती है कि ॐ ब्रह्म है क्योंकि वह बृहत् (बड़ा) है और अपनी शक्ति से दूसरों को भी बड़ा (वर्धित) करता है। इस व्याख्या के मूल में है √बृह् धातु (“बढ़ना”) जिससे मन् प्रत्यय होकर ब्रह्मन् प्रातिपादिक निष्पन्न होता है। नपुंसकलिङ्ग प्रथमा विभक्ति एकवचन में ब्रह्मन् प्रातिपादिक का ब्रह्म रूप बनता है। चूँकि ॐ पर भी है और ब्रह्म भी, अतः उपनिषद् उसे परं ब्रह्म कहती है। इसी नाम को योगी याज्ञवल्क्य स्मृति एक अन्य प्रकार से व्याख्यायित करते हुए कहती है कि ॐ ब्रह्म अर्थात् वेदों का मुख है, शब्दब्रह्म है, और ब्रह्म की ओर ले जाता है।

ऋग्वेद के प्रतिशाख्य में ॐ को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण और विष्णु पुराण में कहा गया है कि बृहत्त्व (विपुलता बढ़ने का भाव) और बृंहणत्व (वर्धकत्व, बढ़ाने का भाव) के कारण ॐ को ब्रह्म कहा जाता है। बृहत् और बृंहण दोनों शब्द √बृह् धातु से निष्पन्न हैं।

ब्रह्म शब्द में मन् प्रत्यय अधिकरण (आधार) के अर्थ में भी समझा जा सकता है। इस कारण से कुछ वैष्णव ग्रन्थों में ब्रह्म को “गुणों की वृद्धि का आधार” ऐसे समझाया गया है। ॐ निरन्तर वर्धमान गुणों का आधार या निवास है; उसका एक नाम गुणजीवक भी है (६७)। यह अर्थ ब्रह्म और ॐ के सगुण पक्ष को प्रकाशित करता है।

परम्परा

उपनिषद्, वैदिक वर्णविज्ञान, स्मृति, पुराणा

व्युत्पत्ति

√बृह् + मनिन् → ब्रह्मन्, अथवा √बृह् + णिच् + मनिन् → ब्रह्मन्; पर + ब्रह्मन् → परब्रह्मन्।

√बृह् ► बढ़ना, फैलना, विस्तृत होना; मनिन् ► कर्ता या अधिकरण अर्थ में प्रत्यय। णिच् ►

प्रेरणार्थक प्रत्यय। पर ► परमा

उद्धरण

अथ, यह परं ब्रह्म क्यों कहलाता है? क्योंकि यह पर (सगुण), अपर (निर्गुण), और परायण (परम गति) है और वर्धित है और अपनी माया (शक्ति) द्वारा [दूसरों को] बढ़ाता है इसलिए परं ब्रह्म कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

यह वरिष्ठ ब्रह्म (ॐ) अध्येता (शिष्य) और अध्यापक (गुरु) के लिये स्वर्ग का नित्य द्वार है।

—ऋग्वेद प्रातिशाख्य

ॐ समस्त वाङ्मय का और त्रिविध वेद का मुख कहा गया है। यह शब्दब्रह्ममय विभु है। यह परब्रह्म को ले जाता है, अतः परं ब्रह्म कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

वृद्धि और वर्धन के कारण ॐ ब्रह्म कहलाता है।

—विविध पुराण



(५८)

## ब्रह्मबीज, वेदबीज

अर्थ

वेदों का बीज (कारण)।

व्याख्या

भागवत पुराण और तन्त्र ग्रन्थों में ॐ को **ब्रह्मबीज** कहा गया है। कुछ पुराणों में ॐ को **वेदबीज** कहा गया है। अमरकोश के अनुसार ब्रह्म शब्द का एक अर्थ है वेद। इसी कारण से वेद के विद्यार्थी को ब्रह्माचारी कहते हैं। ॐ तीनों वेदों का स्रोत या कारण है (५), इसलिये इसे **ब्रह्मबीज** या **वेदबीज** कहते हैं।

परम्परा

पुराण, तन्त्र।

व्युत्पत्ति

ब्रह्म + बीज → ब्रह्मबीज; वेद + बीज → वेदबीज।

ब्रह्म ► वेद; बीज ► अङ्कुर, कारण। वेद ► वेद।

उद्धरण

श्वास को जीतकर **ब्रह्मबीज** (ॐ) को न भूलते हुये मन को नियन्त्रित करना चाहिये।

—भागवत पुराण

ओंकार **ब्रह्मबीज** कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान

मैं उन **वेदबीज** (ॐ) स्वरूप देवी का भजन करता हूँ जो वेदों की माता हैं।

—देवी भागवत

(५९)

## ब्रह्माक्षर

अर्थ

१ ब्रह्म का अक्षर २ ब्रह्म का प्रतिपादक अक्षर।

व्याख्या

त्रिकाण्डशेष कोश के अनुसार ब्रह्माक्षर शब्द का अर्थ है ॐ। एक टीका के अनुसार ॐ “ब्रह्म का अक्षर” है, अर्थात् **अक्षर** के रूप में **ब्रह्म** या शब्दब्रह्म है (९८)। भागवत पुराण में ब्रह्माक्षर शब्द दो बार ॐ के लिये प्रयुक्त हुआ है। टीकाओं में इस नाम का ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाला अक्षर (ब्रह्मप्रतिपादक अक्षर) या वह अक्षर जिसका प्रतिपाद्य ब्रह्म है (ब्रह्मप्रतिपाद्य अक्षर) ऐसा अर्थ किया है।

परम्परा

पुराण, कोश, भाष्या

व्युत्पत्ति

ब्रह्म + अक्षर → ब्रह्माक्षर।

ब्रह्म ► ब्रह्म; अक्षर ► वर्ण, ध्वनि।

उद्धरण

मन से शुद्ध, परम, और तीन ध्वनियों वाले ब्रह्माक्षर (ॐ) का अभ्यास करना चाहिये।

—भागवत पुराण

ब्रह्माक्षर अर्थात् ओंकार। ब्रह्माक्षर—ब्रह्म का अक्षर।

—त्रिकाण्डशेष कोश, तत्रत्य टीका

(६०)

## ध्रुव, ध्रुवाक्षर

अर्थ

१ विष्णु २ शाश्वत [अक्षर या नाशरहित] ३ साधकों के पास जानेवाला [अक्षर]।

व्याख्या

तान्त्रिक ग्रन्थ बीजवर्णाभिधान में ॐ का एक नाम **ध्रुव** है। *महाभारत* में भी इस नाम की ओर संकेत है। विष्णु को *महाभारत* में **ध्रुवाक्षर** कहा गया है। नीलकण्ठ की टीका के अनुसार इसका अर्थ है **प्रणव** या ॐ। *विष्णु स्मृति* में भी विष्णु को **ध्रुवाक्षर** कहा गया है। दोनों उदाहरणों में **ध्रुवाक्षर** शब्द से विष्णु अभिप्रेत हैं, जो **ओंकार** स्वरूप कहे गये हैं (१०७)। *विष्णु सहस्रनाम* में **स्थविर ध्रुव** और **ध्रुव** विष्णु के दो नाम हैं।

**ध्रुव** शब्द √ध्रु धातु से उत्पन्न है जिसके दो विपरीत अर्थ हैं—“जाना” (गति) और “स्थिर होना” (स्थैर्य)। प्रसंग के अनुसार दोनों में से एक अर्थ ग्रहण किया जाता है। **ध्रुव** शब्द में धातु का अर्थ है “स्थिर होना”। *वाचस्पत्य कोश* में **ध्रुव** के स्थिर, निश्चित, शाश्वत, आकाश, विष्णु, शिव, और वटवृक्ष सहित पच्चीस अर्थ हैं। ज्योतिष के ग्रन्थ *सूर्य सिद्धान्त* में मेरु के दोनों ओर आकाश के मध्य में स्थित तारों को **ध्रुवतारा** कहा गया है।

ॐ के लिये प्रयुक्त **ध्रुव** शब्द का अर्थ है शाश्वत या कालातीत। इसका कारण है कि ॐ को आदिरहित (*अनादि*, पृ. ७२), अन्तरहित (*अनन्त*, पृ. ७३), और काल से परे या कालातीत (*त्रैकाल्य*, पृ. ९०) माना गया है। चूँकि ॐ शाश्वत है और **अक्षर** (४७) भी है, अतः एव वह **ध्रुवाक्षर** भी कहलाता है। अथवा **अक्षर** का अस्रुत या नाशरहित अर्थ लेने पर **ध्रुवाक्षर** का “शाश्वत और नाशहीन” ऐसा अर्थ निकलता है। यह अर्थ ॐ और शिव के नाम **त्र्यक्षर** की “भूत, वर्तमान, और भविष्य—तीनों में नाशरहित” व्याख्या में भी कहा गया है (१००)।

*विष्णु सहस्रनाम* पर *नामार्थसुधा* भाष्य में बलदेव विद्याभूषण √ध्रु का “जाना” अर्थ लेकर **ध्रुव** नाम की व्याख्या करते हैं—जो एकान्ती भक्तों का अनुगमन करता है वह **ध्रुव** है। इसी प्रकार ॐ के भी जाने वाला या प्राप्त करने वाला अर्थ कहे गये हैं। ॐ की व्युत्पत्ति √आप् (१७) या √अव् (१०९) धातु से मानी गयी है और दोनों धातुओं में “प्राप्त करना” अर्थ निहित है।

परम्परा

*महाभारत*, तन्त्र, भाष्य।

व्युत्पत्ति

√धु + अच् → ध्रुव; ध्रुव + अक्षर → ध्रुवाक्षर

√ध्रु ► १ जाना २ स्थिर होना, स्थित होना ; अच् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय। ध्रुव ► १ स्थिर, शाश्वत ; २ जाने वाला, अनुगमन करने वाला अक्षर ► वर्ण।

उद्धरण

विष्णु, जिनको ध्रुवाक्षर (ॐ) कहते हैं।

—महाभारत

ध्रुवाक्षर का अर्थ है प्रणव नाम वाले वर्ण स्वरूप (ॐ)।

—महाभारत पर नीलकण्ठ की टीका

ओंकार ध्रुव कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान

ध्रुवति, अर्थात् जो एकान्ती भक्तों का अनुगमन करता है वह ध्रुव है।

—विष्णु सहस्रनाम पर नामार्थसुधा टीका

(६१)

दिव्य

अर्थ

१ स्वर्ग संबन्धी, स्वर्ग में उत्पन्न २ अलौकिक, अद्भुत ३ सुन्दर, आकर्षक।

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में ॐ का एक नाम **दिव्य** भी है। **दिव्य** शब्द के संस्कृत में अनेक अर्थ हैं—**वाचस्पत्य कोश** में २९ अर्थ संगृहीत हैं। **दिव्य** और **देव** दोनों शब्द √दिव् धातु से उत्पन्न हैं। इस धातु के धातुपाठ में दस अर्थ हैं—जो कि √अव् के पश्चात् सर्वाधिक है। हिन्दू ग्रन्थों में **दिव्य** शब्द सर्वाधिक प्रयुक्त शब्दों में से एक है। यह वेदों में सैकड़ों बार, **वाल्मीकि रामायण** में २०० से अधिक बार, **गीता** में १६ बार, और **महाभारत** में १००० से अधिक बार प्रयुक्त हुआ है।

**दिव्य** का प्राथमिक अर्थ है वह जो द्यौं (स्वर्ग या आकाश) में उत्पन्न हुआ हो, इसमें पाया जाता हो, या इसका हो। उदाहरणार्थ **गीता** में स्वर्ग के देवभोगों को **दिव्य** कहा गया है। ॐ **दिव्य** है क्योंकि वह तीनों लोकों के अन्तर्गत स्वर्ग को व्याप्त करता है। इस संदर्भ में स्वर्ग का अर्थ गोलोक, साकेतलोक, या वैकुण्ठलोक भी संभव है। ये लोक क्रमशः श्रीकृष्ण, श्रीराम, और श्रीविष्णु के परम निधान (निवास) हैं। ॐ का इन तीनों देवताओं से तादात्म्य कहा गया है (६, २०, और १०७)। **गीता** में परब्रह्म या कृष्ण के लिये तीन बार **दिव्य** शब्द प्रयुक्त हुआ है।

**दिव्य** का अर्थ अलौकिक या अद्भुत भी होता है। वेद व्यास द्वारा संजय को दी गयी अलौकिक दृष्टि को **दिव्यचक्षु** या **दिव्यदृष्टि** कहते हैं। **गीता** के ग्यारहवें अध्याय में अपना विश्वरूप (या दिव्यरूप) दिखाते समय कृष्ण अर्जुन को यही दिव्यचक्षु प्रदान करते हैं। भगवान् का दिव्यरूप संजय और अर्जुन दोनों देखते हैं। **गीता** में कृष्ण **दिव्य** शब्द का अनेक बार प्रयोग करते हैं—वे अपने जन्म, कर्म, विभूतियों, और रूपों को **दिव्य** कहते हैं। ॐ पर लौटा जाए—ॐ **दिव्य** कहलाता है क्योंकि यह जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति की लौकिक अवस्थाओं से परे अलौकिक अवस्था का प्रतीक माना जाता है (९४)। बीज के रूप में ॐ मन्त्रों को दिव्य बनाता है, अतः इसे **दिव्यमन्त्र** (६२) भी कहते हैं।

**दिव्य** का एक और प्रमुख अर्थ है सुन्दर या आकर्षक। ॐ वह मन्त्र है जो योगियों के मन को मन्त्रमुग्ध करता है। यही कारण है एक प्रसिद्ध श्लोक में वर्णन प्राप्त होता है कि योगी सदैव ॐ का ध्यान करते हैं (ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः)। **लिङ्ग पुराण** में ॐ नमो नारायणाय इस अष्टाक्षर मन्त्र को **परमशोभन** कहा गया है। यह मन्त्र **परम** (७३) या **परमाक्षर** (७४) ॐ के द्वारा शोभन (दिव्य) है।

परम्परा

स्मृति।

व्युत्पत्ति

दिक् + यत् → दिव्य।

**दिक्** ► १ स्वर्ग २ आकाश; **यत्** ► तत्र जातः (वहाँ उत्पन्न), तत्र भवः, (वहाँ प्राप्त), तत आगतः (वहाँ से आया), तस्येदम् (उसका) इन अर्थों में प्रत्यय।

उद्घरण

ॐ दिव्य कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(६२)

## दिव्यमन्त्र

अर्थ

१ दिव्य अथवा अलौकिक मन्त्र २ मन्त्र जिसके कारण दिव्य हैं ३ वेद की संहिताएँ जिसके कारण दिव्य हैं

व्याख्या

अमृतनाद उपनिषद् और गरुड पुराण में ॐ को **दिव्यमन्त्र** कहा गया है। दिव्य (जो ॐ का नाम भी है, पृ. ६१) और मन्त्र दोनों शब्दों के अनेक अर्थ हैं। मन्त्र शब्द √मन्न् धातु (“गुप्त में बोलना”) से उत्पन्न है। साधना में जपे जाने वाले शब्द या वाक्य को मन्त्र कहते हैं, क्योंकि वह गुप्तरूप से कान में दिया जाता है। राजा के सचिव (मन्त्री) द्वारा दिया गया परामर्श भी मन्त्र कहलाता है क्योंकि वह प्रायः एकान्त में दिया जाता है। चार वेदों के संहिता भाग को भी मन्त्र कहते हैं, और विष्णु सहस्रनाम में मन्त्र विष्णु का एक नाम भी है। **दिव्यमन्त्र** के अनेक अर्थों में से तीन यहाँ समझाए गए हैं।

कर्मधारय समास के रूप में **दिव्यमन्त्र** शब्द का अर्थ है “वह मन्त्र जो दिव्य है”। ॐ एक मन्त्र है और यह दिव्य (अलौकिक) है क्योंकि यह ब्रह्म या ईश्वर का नाम है (१९)।

बहुव्रीहि समास के रूप में **दिव्यमन्त्र** शब्द का अर्थ है “वह जिसके कारण एक मन्त्र दिव्य [हो जाता] है”। ॐ नमः शिवाय और ॐ नमो नारायणाय आदि अनेक शक्तिशाली मन्त्र ॐ के कारण दिव्य हैं। लिङ्ग पुराण में ध्रुव विश्वामित्र से पूछते हैं, “मैं सर्वोपरि (सर्वोच्च) स्थान कैसे प्राप्त करूँ?” विश्वामित्र ध्रुव को ॐ नमोऽस्तु वासुदेवाय मन्त्र जपने को कहते हैं। विश्वामित्र कहते हैं कि “यह मन्त्र प्रणव से समन्वित है, [अत एव] दिव्य है”

अन्ततः मन्त्र का यदि वैदिक संहिताएँ यह अर्थ लिया जाए, तो **दिव्यमन्त्र** का अर्थ है “वह जिसके कारण वैदिक संहिताएँ दिव्य हैं”। वैदिक संहिताओं के मन्त्रों के उच्चारण के प्रारम्भ और अन्त में ॐ का प्रयोग होता है। ॐ वेदों का सार (१०७) और स्रोत (१०३) माना गया है। अथवा, ॐ का ब्रह्म के नाम के रूप में प्रतिपादन करने के कारण संहिताएँ दिव्य हैं (१९)।

**दिव्यमन्त्र** शब्द बेळगारी (बेल्लारी), कर्नाटक, के कोळगल्लु (कोलगल) शिलालेख (९६७ ईस्वी) में प्रयुक्त हुआ है। शिलालेख में कार्तिकेय की एक प्रतिमा की स्थापना का वर्णन है। शिलालेख के अनुसार गदाधर नामक ब्राह्मण ने **दिव्यमन्त्र** से कार्तिकेय की स्थापना की। यहाँ **दिव्यमन्त्र** का संभवतः तात्पर्य ॐ से है। उत्तरी बंगाल के एक ग्राम में जन्मे गदाधर का २,००० किलोमीटर दूर बेल्लारी तक के प्रवास का प्रमाण होने के कारण यह शिलालेख महत्वपूर्ण है।

परम्परा

उपनिषद्, पुराण, शिलालेख।

व्युत्पत्ति

दिव्य + मन्त्र → दिव्यमन्त्र।

**दिव्य** ► स्वर्ग संबन्धी, अलौकिक; **मन्त्र** ► साधना में जपा जाने वाले शब्द या वाक्य, मन्त्र।

उद्धरण

**दिव्यमन्त्र** को अनेक बार जपकर अपनी अपवित्रता (आत्ममलव्युति) का वारण करना चाहिए।

—अमृतनाद उपनिषद्

अतः सर्ववेत्ता (सर्वज्ञ) व्यक्ति को भी प्रतिदिन **दिव्यमन्त्र** (ॐ) का जाप करके भागवत पुराण सुनाना चाहिये।

—गरुड पुराण

स्वर्गवास के निमित्त तडा ग्राम में जन्मे, और वरेन्द्री के प्रकाशक (गदाधर) के द्वारा **दिव्यमन्त्र** (ॐ) के जप के साथ यह स्थापित किया गया।

—कोळगल्लु शिलालेख



(६३)

एक

अर्थ

१ एक, अनन्य २ प्रमुख, मुख्य, अग्रगण्य ३ सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट ४ एकमात्र, अकेला, अद्वितीय

व्याख्या

संस्कृत का एक शब्द √इ धातु (“जाना”) से उत्पन्न है। उणादि सूत्र पर नारायण की टीका के अनुसार जो सब संख्याओं को जानता है (व्याप्त करता है) वह एक है। तात्पर्य यह है कि सभी प्राकृतिक संख्याएँ एक से भाज्य हैं। एक शब्द के अन्य कई अर्थ हैं, इनमें से कुछ पाणिनी की अष्टाध्यायी पर पतञ्जलि के महाभाष्य में चर्चित हैं।

अथर्वशिर उपनिषद् के अनुसार ॐ एक कहलाता है क्योंकि ॐ वह एक अजन्मा तत्त्व है जो प्राणों से एकीभूत होकर उनका विसर्जन करता है। दीपिका टीका के अनुसार यहाँ प्राण का अर्थ है वेद या वाणी। उपनिषद् इसके पश्चात् अथर्ववेद की पौप्लाद संहिता से एक मन्त्र उद्धृत करती है —“कुछ कोई उपाय करते हैं; कुछ दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में, और पूर्व में कोई और उपाय करते हैं; उन सबकी यहाँ संगति है और वह एक तत्त्व सब प्रजा (जीवों) के साथ चलता है।” तात्पर्य यह है कि ॐ वह एक शाश्वत तत्त्व है जो सब जीवों के बीच रहता है।

अमरकोश के अनुसार एक शब्द का अर्थ मुख्य या प्रमुख भी है। ॐ एक है क्योंकि वह प्रमुख मन्त्र है—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि वह सब मन्त्रों में नायक (नेता) है। इसके अतिरिक्त ॐ अक्षर (४७), स्वर (४७), और शब्द (८७) नामों से अभिहित होने के कारण प्रमुख वर्ण, प्रमुख ध्वनि, और प्रमुख शब्द भी है।

मेदिनीकोश में एक शब्द का अर्थ श्रेष्ठ भी है। ॐ का एक नाम है परम (७३) जिसका एक अर्थ है श्रेष्ठ।

अन्ततः एक शब्द का अर्थ केवल अर्थात् अद्वितीय या एकमात्र भी है। केवल शब्द से ही कैवल्य (“मोक्ष”) शब्द उत्पन्न है। कैवल्य का शाब्दिक अर्थ है अकेले (बन्धनरहित) होने का भाव। ॐ एक है क्योंकि वह अद्वितीय और एकमात्र परब्रह्म है (१९)। ऋग्वेद में विश्वकर्मा देवता वाले एक सूक्त में एक शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र इस प्रकार है—“उसके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख हैं, सब ओर बाहु हैं, और सब ओर पैर हैं; वह बाहुओं और पैरों से क्रमशः स्वर्ग और भूमि को उत्पन्न करते हुए प्रेरित करता है; वह एक है।”

विष्णु सहस्रनाम में एक (“एकमात्र”) और एकात्मा (“प्रमुख आत्मा”) विष्णु के नाम हैं।

परम्परा

उपनिषद्

व्युत्पत्ति

√इ + कन् → एका

√इ ► जाना; कन् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथ, यह (ॐ) **एक** क्यों कहलाता है? वह सारे प्राणों का संभक्षण करके अजन्मा होकर भी संभक्षण से उनसे एकीभूत होता है और (सृष्टि के समय) उनको विसर्जित करता है, इसलिये वह **एक** कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

(६४)

## एकाक्षर

अर्थ

१ एक अक्षर वाला २ प्रमुख अक्षर ३ श्रेष्ठ अक्षर ४ एकमात्र नाशरहित।

व्याख्या

ॐ का यह प्रसिद्ध नाम स्मृति, पुराण, *महाभारत*, और *गीता* सहस्र धार्मिक ग्रन्थों के साथ-साथ *चाणक्य नीति* में भी प्राप्त होता है। पिछले मनके में *अमर कोश* और *मोदिनी कोश* के अनुसार एक शब्द के चार अर्थ दिये गए हैं। उनके अनुसार *एकाक्षर* शब्द के चार अर्थ इस मनके में दिये जा रहे हैं।

*एकाक्षर* का अर्थ है ऐसा शब्द जिसमें केवल एक अक्षर (एक स्वर वाला वर्ण) हो। ॐ (ओम्) में केवल एक अक्षर है अतः इसे *एकाक्षर* कहते हैं। ॐ को *त्र्यक्षर* (१००) और *पञ्चाक्षर* (२६) भी कहते हैं, इन नामों में *अक्षर* शब्द का भिन्न अर्थ है।

*एकाक्षर* का एक और अर्थ है प्रमुख अक्षर। सभी अक्षरों में ॐ प्रमुख और सर्वोपरि माना गया है। *गीता* के दसवे अध्याय में कृष्ण कहते हैं कि वे *एकम् अक्षरम्* हैं। अधिकांश टीकाओं में इसका अर्थ ॐ बताया गया है। *राघवकृपा भाष्य* में *एकम् अक्षरम्* को प्रधान अक्षर समझाया गया है।

*एक* का अर्थ श्रेष्ठ या सर्वाधिक प्रशंसनीय भी है। अतः *एकाक्षर* का अर्थ है “सर्वश्रेष्ठ अक्षर”। हिन्दू ग्रन्थों में ॐ सर्वाधिक प्रशस्त अक्षर है।

*एक* का अर्थ एकमात्र या अद्वितीय भी है। *एक* का यह अर्थ लेने पर *अक्षर* के वर्ण अर्थ को त्यागना होगा, क्योंकि ॐ एकमात्र अक्षर नहीं है। यहाँ *अक्षर* का नाशरहित अर्थ लेना उपयुक्त है। फिर *एकाक्षर* का “एकमात्र नाशरहित” ऐसा अर्थ निकलता है। ॐ ही एकमात्र नाशरहित तत्त्व है, क्योंकि यह आदि से रहित है (*अनादि*, पृ. ५२), अन्त से रहित है (*अनन्त*, पृ. ५३), और *प्रलय* (५६) है जिसमें सब कुछ विलीन होता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, विष्णु को *विष्णु सहस्रनाम* में *एक* और *एकात्मा* कहा गया है। ऋग्वेद में *एकं सद्*—बहुत प्रकार से वर्णित एक तत्त्व का उल्लेख है (४०)।

हिन्दी और पंजाबी का *इक* (ਇੱਕ) शब्द संस्कृत के *एक* शब्द से ही आया है। अतः सिक्ख धर्म के *इक ओंकार* को “एक ओंकार”, “ओंकार जो प्रमुख है”, “ओंकार जो प्रशस्त है”, और “ओंकार जो एकमात्र है”—इस प्रकार विविध प्रकारों से समझा जा सकता है।

परम्परा

स्मृति, पुराण, महाभारत, गीता, चाणक्य नीति।

व्युत्पत्ति

एक + अक्षर → एकाक्षर।

एक ► १ एक की संख्या २ प्रमुख ३ श्रेष्ठ, प्रशस्ततम ४ एकमात्र, अद्वितीय; अक्षर ► १ वर्ण २ नाशरहिता।

उद्धरण

एकाक्षर परब्रह्म है। एकाक्षर अर्थात् ॐ।

—मनुस्मृति, तत्रत्य टीकाएँ

ॐ—यह शाश्वत एकाक्षर ब्रह्म है।

—विष्णु पुराण

ॐ—यह एकाक्षर ब्रह्म है।

—महाभारत

जो ॐ इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा अनुस्मरण करता हुआ देह छोड़ते हुए प्रयाण करता है वह परमगति को प्राप्त होता है।

—गीता

उस गुरु को जो एकाक्षर (ॐ) मन्त्र देनेवाला है ...।

—चाणक्य नीति

(६५)

## गुणबीज, गुणजीवक

अर्थ

१ सद्गुणों का कारण और पोषक २ गुणों (सत्त्व, रजस्, और तमस्) का बीज ३ जीवों का कारण और पोषक ४ संसार का कारण और पोषक।

व्याख्या

ॐ के ये दो सदृश नाम प्रपञ्च सार तन्त्र और प्राणतोषिणी तान्त्रिक ग्रन्थों में उल्लिखित हैं। गुण शब्द अनेकार्थक है, अतः इन नामों के अनेक अर्थ हैं।

गुण का एक अर्थ है प्रशंसनीय विशिष्टता या सद्गुण। इस अर्थ में गुण का विपरीतार्थक शब्द है दोष। यह अर्थ लेने पर प्रथम अर्थ सद्गुणों का कारण और पोषक प्राप्त होता है। ॐ को ब्रह्म भी कहते हैं, और ब्रह्म का एक अर्थ है बढ़ते हुए गुणों का स्थान (५७)। विशिष्टाद्वैत दर्शन में ब्रह्म को कल्याणमय गुणों (सद्गुणों) से संपन्न और हेय गुणों (दोषों) से रहित माना गया है।

गुण शब्द का एक और अर्थ है सत्त्व, रजस्, और तमस्—ये तीन गुण जो ॐ की तीन ध्वनियों में निहित माने गये हैं (११)। नादबिन्दु उपनिषद् में ॐ का एक ऐसे हंस पक्षी के रूप में वर्णन है जिसके पैर रजस् और तमस् हैं और जिसका शरीर सत्त्व है।

गुण का एक और अर्थ है अप्रधान अथवा गौण, जिसका विलोम शब्द है प्रधान अर्थात् मुख्य। ब्रह्म की तुलना में अप्रधान होने के कारण जीवों को गुण कहा जाता है। तैत्तिरीय उपनिषद् कहती है कि जीव ब्रह्म से जन्म लेते हैं, और जन्म लेकर ब्रह्म पर ही आश्रित होकर जीते हैं। यही उपनिषद् ॐ को ब्रह्म बताती है। इस प्रकार ॐ गुणबीज अर्थात् जीवों का उद्गम या कारण और गुणजीवक अर्थात् जीवों का पोषक है।

अन्ततः तीनों गुणों से निर्मित संपूर्ण संसार भी गुण का अर्थ है। इसी कारण से भागवत पुराण में ब्रह्माण्ड या संसार को त्रिगुणात्मक कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ॐ तीनों लोकों अर्थात् ब्रह्माण्ड का स्रोत है। ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्मा ने ॐ की मात्राओं से ही संपूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि की थी (८)। प्राण, अन्न, और सूर्य के रूप में (८३) ॐ संसार का पोषक भी है।

इसी प्रकार विष्णु सहस्रनाम में विष्णु को गुणभृत् कहा गया है। इस नाम का अर्थ है गुणों का भरण या पोषण करनेवाला। विविध भाष्यों में गुण शब्द का त्रिगुण, सद्गुण, जीव, या संसार अर्थ लिया गया है।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

गुण + बीज → गुणबीज; गुण + जीवक → गुणजीवक।

गुण ► १ सद्गुण २ त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, और तमस्) में अन्यतम ३ गौण, जीव (प्रधान ब्रह्म से अवर) ४ संसार; बीज ► कारण, अङ्कुर, आदि, मूला जीवक ► पोषक, जीवन देनेवाला।

उद्धरण

ओंकार गुणबीज कहलाता है।

—प्रपञ्चसार तन्त्र

ओंकार गुणजीवक कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

(६६)

हंस

अर्थ

१ हंस पक्षी २ सूर्य को ले जाने वाला ३ सर्वव्यापक ४ पापों का संहारक।

व्याख्या

नादबिन्दु उपनिषद् में ॐ का एक ऐसे हंस पक्षी के रूप में वर्णन है, जिसपर आरूढ़ होकर साधक कर्म और पाप से लिप्त नहीं होता। अकार, उकार, और मकार क्रमशः हंस का दाहिना पंख, बायाँ पंख, और पूँछ हैं; और अर्धमात्रा उसका मस्तक है। रजस् और तमस् उसके पैर हैं और सत्त्व उसका शरीर है, धर्म और अधर्म उसके नेत्र हैं, और उसके शरीर के भिन्न-भिन्न भाग सात लोक हैं।

स्मृति और तन्त्र ग्रन्थों में कहा गया है कि ॐ का नाम **हंस** है। हंस शब्द √हन् धातु (“जाना” और “हिंसा करना”) से उत्पन्न है। हंस शब्द के अनेक अर्थों में—यथा एक प्रकार का पक्षी, सूर्य, एक प्रकार का प्राण, एक प्रकार का अश्व—विशिष्ट गमनक्रिया या जाने का अर्थ व्यक्त होता है। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि सूर्य के **ओंकार** तक ले जाने के कारण ॐ **हंस** कहलाता है।

मैदिनी कोश के अनुसार हंस शब्द के अन्य अर्थ हैं विष्णु, परब्रह्म, एक प्रकार का योगी, और एक प्रकार का मन्त्र। श्वेताश्वतर उपनिषद् में ब्रह्म को हंस कहा गया है। राघवकृपा भाष्य में इसका कारण बताया गया है कि ब्रह्म सर्वत्र जाता है और पापों का नाश करता है। ॐ के लिये भी ऐसे समझा जा सकता है—ॐ **सर्वव्यापी** होने के कारण (८२) और **भवनाशन** (९९) होने से संसार का नाश करने के कारण **हंस** है।

ॐ का **हंस** नाम विवेक अथवा सार और निःसार के भेद के ज्ञान का भी रूपक है। हंस पक्षी दूध और पानी के मिश्रण से दूध को ग्रहण करने में सक्षम है ऐसी मान्यता है। हंस संबन्धित उपमाओं और रूपकों में बहुशः दूध और पानी की तुलना क्रमशः धर्म और अधर्म, गुण और विकार, अध्यात्म और संसार, और सत् और असत् से होती है। इसके अतिरिक्त विवेक को बहुधा ज्ञान और मुक्ति के लिये आवश्यक साधन भी माना गया है (८९)। इस प्रकार ॐ के **हंस** नाम का संभवतः यह संकेत है कि ॐ उस विवेक का प्रदाता है जिससे ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

√हन् + स/अच् → हंसा

√हन् ► १ जाना, व्याप्त करना; २ मारना, हिंसा करना, नष्ट करना; स, अच् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अकार दक्षिण पक्ष है, उकार वाम पक्ष है, मकार पूँछ है, और अर्धमात्रा मस्तक है।

—नादबिन्दु उपनिषद्

ओंकार हंस कहलाता है। हृदय में उसका ध्यान सदैव (सूक्ष्म) शरीर का भेदन करके उसे सूर्य के ओंकार को ले जाता है इसलिये वह हंस कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ॐ हंस कहलाता है।

—लक्ष्मी तन्त्र



(६७)

## ईशान

अर्थ

१ ईश्वर, शासक २ द्युतिमान्, कान्तिमान् ३ विष्णु ४ शिव

व्याख्या

अथर्वशिर उपनिषद् कहती है कि सब देवताओं पर शासन करने के कारण ॐ का एक नाम **ईशान** है। उपनिषद् ऋग्वेद में इन्द्र को समर्पित एक सूक्त से मन्त्र उद्धृत करती है—“हे शूर इन्द्र, आप सर्वज्ञ हैं, आप इस जङ्गम जगत् के ईशान हैं और स्थावर जगत् के भी **ईशान** हैं। हम न दोही गयी (दूध से परिप्लावित) गायों की तरह आपकी बार-बार स्तुति करते हैं” वेदों में प्रख्यात **ईशान** शब्द यहाँ दो बार प्रयुक्त हुआ है।

**ईशान** शब्द √ईश् धातु से उत्पन्न है जिसका अर्थ है शासन करना, स्वामी होना, या प्रभु होना। स्वामी और प्रभु के अर्थों में प्रयुक्त **ईश** और **ईश्वर** शब्द भी इसे धातु से उत्पन्न हैं। **ईशान** में **आन** प्रत्यय ताच्छील्य अर्थात् प्रकृति या स्वभाव के अर्थ में है। **ईशान** का शाब्दिक अर्थ है “शासन करने के स्वभाव वाला” अर्थात् “स्वाभाविक शासक”।

मेदिनी कोश के अनुसार नपुंसकलिङ्ग में **ईशान** शब्द का अर्थ ज्योति है। शब्दकल्पद्रुम के अनुसार तीनों लिङ्गों में **ईशान** का अर्थ “ज्योति से विशिष्ट” (द्युति या चमक से युक्त) भी है। यहाँ अर्श-आदि अच् प्रत्यय जानना चाहिये। अथर्वशिर उपनिषद् में **ईशानः** यह पुल्लिङ्ग रूप ॐ का नाम बताया गया है, अतः इसका अर्थ ज्योतिष्मान् या द्युतियुक्त है। **स्वर (४८)** और **वैद्युत (१०१)** नामों में भी यह अर्थ व्यञ्जित है।

विष्णु सहस्रनाम के अनुसार **ईशान** विष्णु का भी नाम है। महाभारत के प्रारम्भ में उग्रश्रवा ऋषि विष्णु को **ईशान** और **एकाक्षर** (अर्थात् ॐ, पृ. ६४) कहते हैं।

अमरकोश में शिव के ४८ नामों में **ईशान** भी है। शिव को भी अनेक ग्रन्थों में ओंकार-स्वरूप कहा गया है (३९)। पुराणों के अनुसार **ईशान** शिव की आठ मूर्तियों में से एक है और सूर्य से संबद्ध है। दुर्गा सप्तशती में शिव के **ईशान** रूप को धूम्रजटिल (धुएँ के रंग की जटाओं वाला) कहा गया है। बृहत् जाबाल उपनिषद् के अनुसार **ईशान** शिव के पाँच रूपों में से एक है और **ईशान** से आकाश की उत्पत्ति हुई है। पञ्चानन शिव का पाँचवा ऊर्ध्व मुख **ईशान मुख** है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ रूपमण्डन में कहा गया है कि यह पाँचवा मुख योगियों से भी परे है और इसलिये मुखलिङ्ग (मुखों वाले लिङ्ग) के निर्माण में इसे नहीं बनाया जाता।

**ईशान** ग्यारह रुद्रों में से एक हैं, इसलिये ग्यारह की संख्या को भी **ईशान** कहते हैं। श्वेताश्वतर

उपनिषद् में ईशान शब्द परब्रह्म के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसका स्त्रीलिङ्ग रूप है ईशानी जो तन्त्र परम्परा में दुर्गा का नाम है।

परम्परा

उपनिषद्।

व्युत्पत्ति

√ईश् + चानश् → ईशान।

√ईश् ► शासन करना, ऐश्वर्ययुक्त होना, स्वामी होना; चानश् ► ताच्छील्य (स्वभाव) के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

अथ, यह ईशान क्यों कहलाता है? यह ईशानी मातृका शक्तियों के साथ सब देवों पर शासन करता है इसलिये ईशान कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ईशान एकाक्षर (ॐ) हरि को नमस्कार करके ...।

—उग्रश्रवा ऋषियों के प्रति, महाभारत

(६८)

## लोकसार

अर्थ

१ संसार का सार २ लोगों (लोक) का अमृत, लोक के लिये अमृत।

व्याख्या

विष्णु सहस्रनाम पर आदि शंकर के भाष्य में लोकसार शब्द का अर्थ ॐ कहा गया है। विष्णु के लोकसारंग नाम पर अपने भाष्य में आदि शंकर छान्दोग्य उपनिषद् की एक श्रुति उद्धृत करके कहते हैं कि लोकसार ॐ है। उद्धृत श्रुति और उसकी अगली श्रुति प्रजापति द्वारा ॐ के साक्षात्कार का वर्णन करती हैं। प्रजापति ने पहले सभी लोकों का ध्यान करके त्रयी विद्या (तीनों वेदों) का साक्षात्कार किया। फिर प्रजापति ने त्रयी विद्या का ध्यान करके तीन अक्षरों (महाव्याहृतियों)—भूर्, भुवः, और स्वः—का साक्षात्कार किया। प्रजापति ने फिर तीन अक्षरों का ध्यान करके ॐ का साक्षात्कार किया। तात्पर्य यह है कि तीनों लोकों अर्थात् ब्रह्माण्ड का सार है तीन वेद, तीनों वेदों का सार हैं तीन व्याहृतियाँ, और तीनों व्याहृतियों का सार है ॐ। ॐ लोकों का परम सार है, अतः यह लोकसार है।

आदि शंकर कहते हैं कि लोकसार अर्थात् ॐ के जप से विष्णु गम्य (प्राप्य) हैं, इसलिये वे लोकसारंग हैं। संयोगवश लिङ्ग पुराण के शिव सहस्रनाम में लोकसारंग शिव का नाम है।

ॐ परम सार है यह सिद्धान्त उसके रस नाम में भी ध्वनित होता है (७८)। छान्दोग्य उपनिषद् में ॐ को रसों में श्रेष्ठ रस कहा गया है, जबकि तन्त्र ग्रन्थों में ॐ को त्रितत्त्व (“तीन तत्त्वों या सारों का समाहार”) कहा गया है।

संस्कृत में लोक शब्द का जनता अथवा लोग भी अर्थ है। यह अर्थ आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी प्राप्त है, यथा हिन्दी के लोकतन्त्र शब्द में और गुजराती और मराठी के लोकशाही शब्द में। संस्कृत में सार का अर्थ अमृत भी होता है। अतः लोक का अमृत भी लोकसार का अर्थ है। छान्दोग्य उपनिषद् में ॐ को अमृत (“मरणरहित या पीयूष”) कहा गया है। उपनिषद् के अनुसार ॐ में प्रवेश करने पर देव अमर हो गये थे, और जो यह जानता है और ॐ में प्रवेश करता है (उसकी शरण में जाता है), वह मृत्यु से मुक्त होता है। इस मृत्यु से मुक्ति को मोक्ष, अर्थात् जन्म और मरण के चक्र से मुक्ति समझना चाहिये।

परम्परा

भाष्या

व्युत्पत्ति

लोक + सार → लोकसार

**लोक** ► १ ब्रह्माण्ड के तीन, सात, या चौदह लोकों में से एक २ लोग, जनता; **सार** ► १ सारतत्व, तात्पर्य २ अमृत।

उद्धरण

अथवा, प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् (“प्रजापति ने लोकों का ध्यान किया) इस श्रुति से लोकसार  
ॐ है।

—विष्णु सहस्रनाम पर  
आदि शंकर का भाष्य

(६९)

## मन्त्रादि, मन्त्राद्य

अर्थ

१ मन्त्रों का प्रारम्भ २ मन्त्रों का स्रोत ३ प्रथम मन्त्र ४ प्रधान/श्रेष्ठ मन्त्र।

व्याख्या

ॐ के ये दो नाम तीन तान्त्रिक ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। *तलिता-सहस्रनाम* पर भास्करराय के भाष्य में भी *मातृका कोश* को उद्धृत करते हुए *मन्त्रादि* शब्द का अर्थ ॐ बताया गया है।

√मन् धातु (“गुप्त भाषण करना”) से *मन्त्र* शब्द की व्युत्पत्ति बतायी जा चुकी है (६२)। निरुक्त में यास्क *मनन* (विचार) अर्थात् √मन् धातु (“विचार करना, सोचना”) से *मन्त्र* शब्द की निष्पत्ति करते हैं। *राम-तापिनि-उपनिषद्* में *मन्त्र* शब्द की व्युत्पत्ति *मनन* (ध्यान) और *त्राणन* (रक्षण) से दिखायी गयी है। इसी प्रकार *बृहत्-तन्त्र-सार* में इसकी व्युत्पत्ति *मननात् त्रायते* अर्थात् जो “मनन करने पर रक्षा करता है” वह मन्त्र है ऐसी बतायी गयी है।

*आदि* शब्द के प्रारम्भ, कारण, और प्रथम अर्थ हैं। *आद्य* शब्द के “आदि में होने वाला” अर्थात् प्रथम और प्रधान या श्रेष्ठ अर्थ हैं। इनके अनुसार *मन्त्रादि* और *मन्त्राद्य* नामों के यहाँ चार अर्थ बताए गये हैं।

*मन्त्रादि* का अर्थ है मन्त्र का प्रारम्भ। पहले बताया जा चुका है कि ॐ नमः शिवाय, ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, और ॐ मणि पद्मे हुम् इत्यादि अनेक मन्त्रों के प्रारम्भ में ॐ आता है (८), अतः यह *मन्त्रादि* है। वैदिक मन्त्रों के प्रारम्भ में भी इसका उच्चारण होता है, इस कारण से भी यह *मन्त्रादि* है।

*मन्त्र* शब्द का अर्थ वेद का संहिता भाग भी है। अतः *मन्त्रादि* का अर्थ है वैदिक संहिताओं का कारण, स्रोत, या मूल। *गोपथ ब्राह्मण* के अनुसार ब्रह्मा ने ॐ की तीनों मात्राओं से ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद की रचना की, और उसकी वकार मात्रा से अथर्ववेद की रचना की। इस प्रकार ॐ *मन्त्रादि* है अर्थात् वैदिक मन्त्रों का कारण है।

*मन्त्रादि* और *मन्त्राद्य* का एक और अर्थ है “प्रथम मन्त्र”। ॐ और अथ ब्रह्मा के मुख से बाहर आने वाले पहले शब्द माने गये हैं (८)। यद्यपि ॐ और अथ दोनों माङ्गलिक हैं, ॐ मन्त्र है और अथ मन्त्र नहीं है। इस कारण से ॐ प्रथम मन्त्र है। यद्वा, यदि *मन्त्र* शब्द का अर्थ वेद का संहिता भाग लिया जाये, तो *मन्त्रादि* और *मन्त्राद्य* का अर्थ है प्रथम वैदिक संहिता। *भागवत पुराण* के अनुसार सत्ययुग में एक ही वेद था और वह ॐ था (१०४)। इस प्रकार ॐ ही प्रथम मन्त्र या आद्य वैदिक संहिता है।

अन्ततः, **मन्त्राद्य** का अर्थ प्रधान या श्रेष्ठ मन्त्र भी है। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि ॐ सभी मन्त्रों का नायक (नेता) है, अर्थात् ॐ सभी मन्त्रों में प्रधान या श्रेष्ठ है।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

**मन्त्र + आदि → मन्त्रादि; मन्त्र + आद्य → मन्त्राद्य।**

**मन्त्र** ► १ जपा जाने वाला मन्त्र २ वैदिक संहिता; **आदि** ► १ प्रारम्भ २ कारण, स्रोत; ३ प्रथमा।  
**आद्य** ► १ प्रथम २ प्रधान, श्रेष्ठ।

उद्धरण

**ओंकार मन्त्रादि** कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान

**ओंकार मन्त्राद्य** कहलाता है।

—मातृका कोश, प्राणतोषिणी

(७०)

## नारायण

अर्थ

१ आत्माओं, तत्त्वों, और जगत् का व्यापक २ मनुष्यों और आत्माओं की गति (शरण) ३ जगत् के साथ चलने वाला।

व्याख्या

स्मृति और तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार **नारायण** ॐ का नाम है। स्मृतियों, पुराणों, और भाष्यों में **नारायण** शब्द के अनेक अर्थ समझाये गये हैं। यहाँ प्रस्तुत किये गये अर्थ **शिव पुराण** में एक शिव-पार्वती संवाद पर आधारित हैं।

सभी आत्माओं के संघ को **नार** कहते हैं। ये **नार** ॐ के **अयन** अथवा निवास-स्थान हैं इसलिये ॐ **नारायण** है। पञ्चतत्त्वों को भी **नार** कहते हैं और ये भी ॐ के **अयन** या निवास हैं इसलिये ॐ **नारायण** है। साथ ही, चित् (सजीव) और अचित् (निर्जीव) जगत् को भी **नार** कहते हैं। यह **नार** भी ॐ का **अयन** है इसलिये ॐ **नारायण** है। ॐ के **सर्वव्यापी** नाम (८२) में भी ये तीन अर्थ व्यञ्जित होते हैं। तीनों अर्थों में **अयन** का अर्थ निवास-स्थान लिया गया है जैसा कि **रामायण** (“राम का अयन या निवास”) शब्द के विषय में प्रसिद्ध है।

**अयन** का एक अर्थ गति (या शरण) भी है, यथा **परायण** शब्द का अर्थ है परम गति। **नार** का एक अर्थ है मानवता या सारे मनुष्य। ॐ सभी मनुष्यों की गति है, इसलिये **नारायण** है। सभी आत्माओं को भी **नार** कहते हैं, उनकी गति होने के कारण भी ॐ **नारायण** है। ये दोनों अर्थ **छान्दोग्य उपनिषद्** में देवों द्वारा ॐ में प्रवेश करके अमरत्व प्राप्त करने के संदर्भ में प्रमाणित हैं (६८)।

**अयन** का एक और अर्थ है चलना या जाना, और **नार** का अर्थ है संसार या ब्रह्माण्ड। अतः **नारायण** का अर्थ है संसार के साथ चलने वाला। संसार को सदैव चलने वाला या परिवर्तनशील माना गया है। संसार को संस्कृत में **जगत्** (“जाने वाला” या “चलने वाला”) कहते हैं, यह शब्द √गम् धातु (“जाना, चलना”) से उत्पन्न है। ॐ संसार के साथ गमनशील हैं क्योंकि वह संसार से पृथक् नहीं है (१०८)।

**नारायण** विष्णु का एक अति प्रसिद्ध नाम है। यह ॐ **नमो नारायणाय** इस अष्टाक्षर मन्त्र का भाग है। विष्णु के **नारायण** नाम को **मनुस्मृति** में इस प्रकार समझाया गया है—“जल देवता नर (परब्रह्म) की संतान हैं, अतः जल देवता **नार** कहे गये हैं, वे जल देवता इस ईश्वर के पूर्व **अयन** (स्थान) हैं इसलिये वह **नारायण** कहलाता है।” **नारायण** कृष्ण का भी नाम है। महाभारत में कुरुक्षेत्र युद्ध में दुर्योधन के पक्ष में लड़ने वाली कृष्ण की सेना का नाम **नारायणी सेना** था।

परम्परा

स्मृति, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

नार + अयन → नारायण।

**नार** ► १ आत्माओं का संघ २ तत्त्व ३ मानवता, मनुष्य वर्ग ४ संसार; **अयन** ► १ स्थान, निवास  
२ गति ३ जाना, संगति।

उद्धरण

**ओंकार नारायण** कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

**ओंकार नारायण** [कहा जाता है]।

—लक्ष्मी तन्त्र



(७१)

## निरञ्जन

अर्थ

१ निर्मल, कलङ्करहित, स्वच्छ २ अन्धकार रहित ३ अज्ञानरहित ४ कर्म के लेप से रहित।

व्याख्या

ॐ का यह नाम योगी याज्ञवल्क्य स्मृति और नैगम कोश में मिलता है। अञ्जन शब्द का प्राथमिक अर्थ है कज्जल या काजल। काले रङ्ग का होने के कारण अञ्जन के कलङ्क, अन्धकार, और अज्ञान अर्थ हैं। निरुपसर्ग का अर्थ निर्गत है, अतः निरञ्जन का अर्थ है जिससे कलङ्क, अन्धकार, या अज्ञान निकल चुका हो अर्थात् जो कलङ्क, अन्धकार, या अज्ञान से रहित हो। ॐ निरञ्जन कहलाता है क्योंकि यह पवित्र (सर्वपावन, पृ. ८०), द्युतिमान् (दिव्य, पृ. ६१), और सर्वज्ञ (सर्वविद्, पृ. ८१) माना गया है।

चूँकि अञ्जन (काजल) एक लेप है, यह जीव को चिपकने वाले कर्म का प्रतीक है। कर्म के बन्धन या भार को बहुधा कर्मलेप कहा जाता है। ईश उपनिषद् कहती है कि इस लोक में निष्काम भाव से कर्म करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य में कर्म का लेप नहीं होता। अतः निरञ्जन का एक अर्थ “कर्म के लेप से रहित” भी है। श्वेताश्वतर और मुण्डक उपनिषदों में क्रमशः ब्रह्म और कर्मयोगी के लिये प्रयुक्त निरञ्जन शब्द को कुछ भाष्यों में इसी प्रकार समझाया गया है। परब्रह्म स्वरूप ॐ कर्म के लेप से रहित है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि कर्म उन्हें लिप्त नहीं करते हैं।

ॐ के तूष्णींभाव अर्थ (१३) के समान उसका निरञ्जन नाम भी उसके निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादक है। अनेक मध्ययुगीन ग्रन्थों और परम्पराओं में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करने के लिये अलख निरञ्जन इस शब्द युग्म का प्रयोग हुआ है। अलख शब्द संस्कृत के अलक्ष्य (“अदृश्य”) शब्द से आया है, जबकि निरञ्जन शब्द संस्कृत का निरञ्जन शब्द ही है जो उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों (लिङ्ग पुराण के शिवसहस्रनाम में निरञ्जन शिव का एक नाम है), और तन्त्रशास्त्रों में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास की रामचरितमानस में अलख और निरञ्जन दोनों शब्द स्वतन्त्र रूप से चार बार ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के वर्णन में प्रयुक्त हुये हैं। अलख निरञ्जन शब्दयुग्म मध्यकालीन भारत में नाथ, योग, सिक्ख, और सूफी सम्प्रदायों में भी प्रचलित था। हठ योग परम्परा में निरञ्जन एक सिद्ध गुरु का नाम है। नाथ और हठ योग परम्परा में साधु अलख निरञ्जन कहते हुये भिक्षायाचन करते हैं। कबीर कई पदों में ब्रह्म को अलख निरञ्जन कहते हैं। सिक्खों के ग्रन्थ गुरु ग्रन्थ साहिब में दोनों शब्द १०० से अधिक बार और एक साथ नौ बार प्रयुक्त हुये हैं। कुतबन और मलिक मुहम्मद जायसी इन सूफी कवियों ने भी मृगावती और पद्मावत काव्यों में ब्रह्म को वर्णित हुए अलख निरञ्जन कहा है।

परम्परा

स्मृति, कोश

व्युत्पत्ति

**निर् + अञ्जन → निरञ्जन**

**निर्** ► रहित, मुक्त, निर्गत, या निष्क्रान्त अर्थ वाला उपसर्ग; **अञ्जन** ► कलङ्क, रात्रि या अन्धकार, अज्ञान (काजल)।

उद्धरण

**ओंकार निरञ्जन** और अन्य पर्यायों द्वारा शास्त्रों में गाया (जाना) जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

**प्रणव मन्त्र निरञ्जन** (कहलाता) है।

—नैगम कोश

(७२)

## पञ्चरश्मि

अर्थ

१ पाँच किरणों वाला २ पाँच अश्वरज्जुओं (लगामों) वाला

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थों में ॐ को **पञ्चरश्मि** कहा गया है। मध्यकालीन ग्रन्थ *बृहत् तन्त्रसार* के अनुसार यह नाम *यक्ष डामर* ग्रन्थ में प्राप्त है। आदि शंकराचार्य के नाम से प्राप्त *प्रपञ्चसार तन्त्र* में योगियों की पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया, और तदतीता (तुरीय से भी परे शान्त अवस्था)। ग्रन्थ पर प्राप्त एक भाष्य में इन पाँच अवस्थाओं का ॐ की पाँच किरणों—बीज (मूल), बिन्दु (नासिक्य ध्वनि), नाद (घोष), शक्ति (सामर्थ्य), और लय (एकतानता) से क्रमशः संबन्ध बताया गया है।

ऋग्वेद में सोम और पूषन् (पूषा) के सर्वत्र परिवर्तमान रथ को **पञ्चरश्मि** (पाँच रज्जुओं वाला) कहा गया है। सायण भाष्य के अनुसार पाँच ऋतुएँ—वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमन्त-शिशिर—ये पाँच रश्मियाँ हैं। पूषा बारह आदित्यों में एक हैं। *अमर कोश* में पूषा सूर्य के ३७ नामों में परिगणित है। पूषा शब्द का अर्थ है पोषण करनेवाला अथवा बढ़नेवाला। सूर्य का बहुत्र ॐ से तादात्म्य दिखाया गया है (देखें *आदित्य*, पृ. ७७)। चूँकि उपर्युक्त पाँच रश्मियाँ पूषा की हैं, अतः पूषा को भी **पञ्चरश्मि** कहा गया है। इस प्रकार पूषा या सूर्य के रूप में ॐ **पञ्चरश्मि** है, अर्थात् उसके रथ में पाँच रज्जुएँ हैं।

सूर्य को इसलिए भी **पञ्चरश्मि** कहा गया है क्योंकि सूर्य की किरणें पाँच रंगों वाली कही गई हैं। *छान्दोग्य उपनिषद्* में सूर्य को पिङ्गल (भूरा), शुक्ल (श्वेता), नील (नीला), पीत (पीला), और लोहित (लाल) कहा गया है। उपनिषद् के अनुसार हृदय से निकलने वाली नाडियाँ इन पाँच वर्णों के अनुसार पाँच सूक्ष्म अणु या रस से युक्त हैं। अन्यत्र भी ॐ को हृदयरथ कहा गया है (देखें *त्र्यवस्थान*, पृ. ९८)।

*तारा भक्ति रहस्य दीपिका* नामक गुह्य ग्रन्थ में ओं हीं स्त्रीं हुं फट् इस पञ्चाक्षर मन्त्र को **पञ्चरश्मि** कहा गया है। यह मन्त्र तान्त्रिक देवी उग्रतारा (अथवा तारा) की उपासना के लिये निर्दिष्ट है।

बौद्ध तन्त्र परम्परा में पञ्चतत्त्वों का प्रतिनिधित्व करने वाली पाँच ध्वनियों—य, र, ल, व, और ह—की पाँच वर्ण वाली किरणों को **पञ्चरश्मि** कहा गया है। ॐ भी पञ्च महाभूतों से संबद्ध है। *गोपथ ब्राह्मण* में ॐ को पाँच तत्त्वों का मूल कहा गया है (८)।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

पञ्च + रश्मि → पञ्चरश्मि

पञ्च ► पाँच; रश्मि ► १ लगाम, रज्जु, अश्वरज्जु २ किरण।

उद्घरण

ओंकार पञ्चरश्मि कहा गया है।

—विविध तन्त्र ग्रन्थ

(७३)

परम

अर्थ

१ परब्रह्म को मापने वाला २ परब्रह्म को (ध्वनि के रूप में) व्यक्त करने वाला ३ आन्तरिक शत्रुओं को फेंकने या मारने वाला ४ उत्कृष्ट, श्रेष्ठ ५ प्रधान, प्रमुख ६ प्रथम, आद्य ७ अग्रसर, नायक ८ शिवा

व्याख्या

विश्व कोश के अनुसार परम शब्द का एक अर्थ **ओंकार** है। इस अर्थ में परम का प्रयोग कालिदास ने कुमारसंभव में किया है। परम शब्द पर (“ब्रह्म”, अथवा “शत्रु”) उपपद और √मा (“नापना या शब्द करना”), √मि (“फेंकना”), या √मी (“हिंसा करना”) धातु से व्युत्पन्न है। उपर्युक्त प्रथम तीन अर्थ ॐ के सन्दर्भ में परम शब्द के शाब्दिक अर्थ हैं। ॐ ब्रह्म-साक्षात्कार का साधन रूपी मन्त्र है (तार, पृ. ८९), अतः यह ब्रह्म को नापने वाला है। ब्रह्म का नाम होने से ॐ ब्रह्म को शब्दित (व्यक्त) करता है। गुणों का जीवक (६७) और अवगुणों का वलामक (८७) होने के कारण ॐ आन्तरिक शत्रुओं का क्षेपक (फेंकनेवाला) या संहारक (मारने वाला) है।

परम शब्द संस्कृत में उपर्युक्त अन्तिम पाँच अर्थों में रूढि है। परम का अर्थ है पर, उत्कृष्ट, या श्रेष्ठ—ॐ सर्वश्रेष्ठ मन्त्र माना गया है (६९)। परम का अर्थ है प्रधान या प्रमुख—गीता में कृष्ण ने ॐ को एकम् अक्षरम् अर्थात् प्रमुख अक्षर कहा है (४७)। परम का एक और अर्थ है प्रथम या आद्य—ॐ प्रथम बीज (४९) और प्रथम वेद (१०३) माना गया है। परम का एक अर्थ अग्रसर या नेता भी है—ॐ अग्रसर है क्योंकि वह आगे ले जाने वाला (३१) और मोक्ष की ओर ले जाने वाला है (३४)। अन्ततः परम शिव का एक नाम है, और ॐ का शिव के साथ तादात्म्य बताया गया है (३९)।

परम शब्द परब्रह्म के लिये प्रयुक्त परमात्मा और परमेश्वर शब्दों का भाग है। ये दोनों विष्णु सहस्रनाम में विष्णु के नाम हैं। भारत में निर्मित प्रथम सुपरकम्प्यूटर शृङ्खला का नाम भी परम (PARAM) है।

परम्परा

कोश, काव्या

व्युत्पत्ति

पर + √मा + क → परम, पर + √मि + ड → परम, अथवा पर + √मी + ड → परमा

पर ► १ परब्रह्म २ शत्रु; √मा ► १ नापना, माप लेना २ शब्द करना। √मि ► क्षेपण करना,

फेंकना। √**मी** ▶ हिंसा करना, मारना। **क**, **उ** ▶ कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

और *परम* शब्द **ओंकार** के लिये भी कहा जाता है।

—विश्व कोश

फिर मुनिमण्डल **परम** कहकर चला गया। ‘परम कहकर’, अर्थात् ॐ कहकर।

—कालिदास का *कुमारसंभव*,  
तत्रत्य मल्लिनाथ की टीका

(७४)

## परमाक्षर

अर्थ

१ सर्वोत्कृष्ट अक्षर २ परात्पर और अविनाशी।

व्याख्या

ब्रह्म उपनिषद् और शिव पुराण में ॐ को **परमाक्षर** कहा गया है। तैत्तिरीय आरण्यक में इस नाम के व्यस्त (समासरहित) रूप **परम अक्षर** का संकेत है। आरण्यक का वचन है—ॐ यह वेदत्रयी है, वाक् है, और परम अक्षर है। तत्पश्चात् आरण्यक में ऋग्वेद का एक गूढ मन्त्र उद्धृत है जिसका अर्थ है—“देवता वैदिक ऋचा (मन्त्र) के परम अक्षर पर आकाश में आश्रित हैं।” सायण द्वारा इस मन्त्र के अनेक अर्थ दिये गये हैं, जिनमें से एक में **परम अक्षर** का अर्थ निरतिशय **ओंकार** दिया गया है। गीता के आठवे अध्याय में अर्जुन कृष्ण से “ब्रह्म क्या है” यह पूछते हैं। कृष्ण उत्तर देते हैं कि ब्रह्म परम अक्षर है। आगे जब ग्यारहवे अध्याय में कृष्ण अपने विश्वरूप का दर्शन कराते हैं तब अर्जुन उनकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—“आप जानने योग्य परम अक्षर हैं।” इन दोनों स्थलों पर **परम अक्षर** का अर्थ **ओंकार** लिया जा सकता है। इस प्रकार ॐ के **परमाक्षर** नाम का मूल ऋग्वेद में है और कई हिन्दू ग्रन्थों में इस नाम की ओर संकेत किया गया है।

**परम** शब्द के ॐ के संदर्भ में अनेक अर्थ हैं (७३)। उन सभी का ग्रहण यहाँ संभव है, पर विस्तार के भय से यहाँ एक ही अर्थ (पर, सर्वश्रेष्ठ) लिया गया है। चूँकि **अक्षर** का अर्थ वर्ण है, **परमाक्षर** का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ वर्ण या परात्पर वर्ण, जैसा ॐ के विषय में कहा जा चुका है (६४)।

**अक्षर** का दूसरा अर्थ यहाँ नाशरहित लेने से **परमाक्षर** का “परात्पर नाशरहित” ऐसा अर्थ प्राप्त होता है। ॐ सर्वशक्तिमान् (१०६) होने से पर है और क्षणरहित (७४) होने से नाशरहित है।

अनेक हिन्दू देवताओं के लिये **परमाक्षर-विग्रह** शब्द का प्रयोग हुआ है। **परमाक्षर-विग्रह** का अर्थ है **परमाक्षर** का स्वरूप अथवा वह जिसका स्वरूप या व्यक्त रूप **परमाक्षर** है। **परमाक्षर-विग्रह** कृष्ण **सहस्रनाम** में कृष्ण का और ज्योतिष ग्रन्थ **बृहद् ज्योतिष अणर्व** में प्राप्त गुरु **सहस्रनाम** में गुरु का नाम कहा गया है। काश्मीर शैव मत के प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रमुख ग्रन्थ **ईश्वर प्रत्याभिज्ञा दर्शन कारिका** में शिव को **परमाक्षर-विग्रह** कहकर वर्णित किया गया है। इन नामों और वर्णनों में **परमाक्षर** को ॐ समझा जा सकता है।

परम्परा

उपनिषद्, पुराण।

व्युत्पत्ति

परम + अक्षर → परमाक्षर।

**परम** ► पर, सर्वश्रेष्ठ; **अक्षर** ► १ वर्ण २ नाशरहिता।

उद्धरण

वहाँ चतुष्पाद ब्रह्म सुशोभित है। जाग्रत् अवस्था में ब्रह्मा, स्वप्नावस्था में विष्णु, सुषुप्ति में रुद्र (शिव), और तुरीय [अवस्था] **परमाक्षर** (ॐ) है।

—ब्रह्म उपनिषद्

फिर उस **परमाक्षर प्रणव** (ॐ) के विभक्त होने पर भी उन दो देवों (ब्रह्मा और विष्णु) ने विभाजन का कारण नहीं समझा।

—शिव पुराण



(७५)

प्रभु

अर्थ

१ समर्थ, सक्षम २ नाथ, स्वामी ३ नित्य ४ पालक, रक्षक ५ सर्वश्रेष्ठ, प्रमुखा

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थ प्राणतोषिणी में ॐ का एक नाम प्रभु बताया गया है। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार हिरण्यगर्भ दर्शन के अनुयायी ॐ को प्रभु कहते हैं। महाभारत में भीष्म के वचन के अनुसार हिरण्यगर्भ योग दर्शन के प्रथम आचार्य हैं।

प्र + √भू (“समर्थ होना, शक्तिमान् होना”) धातु से उत्पन्न प्रभु शब्द का अर्थ है समर्थ या शक्तिमान्। तन्त्रशास्त्रों के अनुसार प्रभु वह है जो निग्रह (नियन्त्रण) और अनुग्रह (कृपादृष्टि) दोनों में समर्थ है। दुष्टों का निग्रह और भक्तों पर अनुग्रह राम और कृष्ण सट्श अवतारों की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं। राम और कृष्ण दोनों का ॐ से तादात्म्य कहा गया है (६, २०)। ॐ के भवनाशन (७७) और सर्वपावन (८०) नाम भी उसकी निग्रह और अनुग्रह की शक्तियों के द्योतक हैं।

प्रभु शब्द का अर्थ शासक या नायक (नेता) भी है। जैसा कि ईशान (६७) नाम के अर्थ में बताया जा चुका है, ॐ को सभी देवों का शासक कहा गया है। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ॐ सभी मन्त्रों का नायक है। अर्थशास्त्र में चाणक्य ने कहा है कि कोष (निधि) और दण्ड (अपराधशमन) एक प्रभु (शासक) की शक्तियाँ हैं। ॐ का ज्ञान के प्रदाता (३७) और अव्यय निधि (७४) के रूप में वर्णन प्राप्त है। यह ॐ की कोषशक्ति की ओर संकेत है। साथ ही ॐ को रुद्र कहा गया है (७९), जिसका अर्थ है दुष्टों को रूताने वाला ब्रह्मा। यह ॐ की दण्डशक्ति की ओर संकेत है।

संस्कृत कोशों के अनुसार प्रभु शब्द के कुछ अन्य अर्थ हैं—नित्य, पालक, और श्रेष्ठ। ॐ नित्य है क्योंकि वह आदिरहित (अनादि, पृ. ७२) और अन्तरहित (अनन्त, पृ. ७३) है—इसी कारण से यह ध्रुव (६०) और त्र्यक्षर (१००) भी कहलाता है। ॐ के प्रणव नाम का अर्थ प्राण (जीवन, प्राणशक्ति, या जीव) का रक्षक कहा गया है (३८)। ॐ शब्द ही पाणिनीय व्याकरण में √अव् धातु से व्युत्पन्न है, जिसका प्रथम अर्थ है “रक्षा करना” या “पालन करना” (१०९)। अन्ततः, प्रकृष्ट रूप से स्तुत होने के कारण (प्रणव, पृ. ३०) ॐ प्रकृष्ट या श्रेष्ठ है। ॐ के नाम एक (६३) का भी अन्यतम अर्थ श्रेष्ठ है।

वैदिक मन्त्रों में प्रभु शब्द का अनेक बार प्रयोग प्राप्त है। बहुधा यह शब्द विभु शब्द के साथ प्रयुक्त हुआ है। विभु शब्द भी ओंकार का एक नाम है (१०६)। गीता के पाँचवे अध्याय में क्रमशः दो

श्लोकों में प्रभु और विभु शब्दों का प्रयोग हुआ है। विष्णु सहस्रनाम में प्रभु शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। महाभारत के अन्तर्गत शिव सहस्रनाम में प्रभु शिव का नाम बताया गया है।

परम्परा

स्मृति, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

प्र + √भू + डु → प्रभु

प्र + √भू ► समर्थ या सक्षम होना, प्रकर्ष सहित होना; डु ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

योग के उत्तम साधन प्रणव को हिरण्यगर्भ के अनुयायी प्रभु कहते हैं।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ओंकार प्रभु कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

(७६)

## प्रलय

अर्थ

१ तीन होने या अन्तर्हित होने का अधिकरण २ प्रकृष्ट (श्रेष्ठ) लय वाला ३ ताल (संगीत में काल की इकाई)।

व्याख्या

अथर्वशिखा उपनिषद् में ॐ का एक नाम **प्रलय** कहा गया है। उपनिषद् कहती है कि ॐ सभी प्राणों को प्रलीन करता है, अतः **प्रलय** कहलाता है। ॐ को प्राणों का रक्षक तो माना ही गया है (देखें पृ. ३८), यहाँ उसे प्राणों का अन्तिम निलय भी कहा गया है। इसी प्रकार **विष्णु सहस्रनाम** में विष्णु को **प्राणनिलय** (प्राण का निवास) और **सर्वासुनिलय** (सभी प्राणों का निवास) कहा गया है।

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के ओंकार-निर्णय नामक सुप्रसिद्ध द्वितीय अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है कि **प्रणव** (ॐ) से प्रारम्भ होने वाले मन्त्र चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष) के दाता हैं क्योंकि वे उसी से निःसृत होते हैं और उसी में प्रलीन होते हैं। स्मृति में **प्रलीयन्ते** (“घुलते हैं, लुप्त होते हैं”) शब्द का प्रयोग है। **प्रलीयन्ते** शब्द प्र + √ली धातु से उत्पन्न है, और प्र + √ली से ही **प्रलय** शब्द भी उत्पन्न है जो इसी स्मृति में आगे ॐ का नाम बताया गया है।

आपटे संस्कृत-हिन्दी कोश के अनुसार **प्रलय** ॐ का नाम है क्योंकि उसी से सब निःसृत होते हैं और उसी में प्रलीन हो जाते हैं।

एक बहुव्रीहि समास के रूप में **प्रलय** शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट लय से युक्त लय ॐ की पाँच किरणों में से एक है (७२)। ॐ **प्रलय** है क्योंकि इसका लय प्रकृष्ट या श्रेष्ठ है—यतः **प्रपञ्चसार तन्त्र** के अनुसार लय तुरीयातीत अवस्था का प्रतीक है (७२)।

चूँकि लय शब्द का अभिप्राय संगीत की लय से भी है, **प्रलय** का एक और अर्थ है “(तीन) प्रकृष्ट लयों वाला”, अर्थात् ताल। ताल भारतीय संगीत में काल का मान है और इसकी तीन लय हैं—विलम्बित (धीमी लय), मध्यम (बीच की लय), और द्रुत (तेज लय)। ॐ का काल से सम्बन्ध है (९०) और ताल संगीत में काल का माप है। ॐ को संगीत का स्रोत नाद ब्रह्म भी माना गया है (८६)। **संगीत रत्नाकर** के अनुसार संगीत के तीनों भाग—गीत, वाद्य, और नृत्य—ताल में ही प्रतिष्ठित हैं। अन्ततः, ॐ को शिव कहा गया है (३९), और **संगीत रत्नाकार** में ताल पर अध्याय के प्रारम्भ में शिव और ताल की युगपत् स्तुति है।

परम्परा

## उपनिषद्, स्मृति, कोश

व्युत्पत्ति

प्र + √ली + अच् → प्रलय; अथवा प्र + लय → प्रलया

प्र + √ली ► घुलना, लुप्त होना; अच् ► अधिकरण के अर्थ में प्रत्यय। प्र ► प्रकृष्ट, श्रेष्ठ; लय ► संगीत की ताल।

उद्धरण

ॐ सभी प्राणों को प्रलीन करता है, अतः प्रलय कहलाता है।

—अथर्वशिखा उपनिषद्

सभी मन्त्र ॐ से निःसृत हुए हैं और उसी में प्रलीन होते हैं। ओंकार प्रलय कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

प्रलय—रहस्यमय ध्वनि ॐ—उसी से सब निःसृत होते और उसी में प्रलीन हो जाते हैं।

—आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश

(७७)

## प्रस्वार

अर्थ

प्रकृष्ट स्वर या ध्वनि।

व्याख्या

ऋग्वेद के प्रतिशाख्य में ॐ का **प्रस्वार** यह नाम प्राप्त होता है। ग्रन्थ में प्रकरण है एक गुरु द्वारा छात्रों को वेदाध्यापन का प्रारम्भ। प्रातिशाख्य के अनुसार गुरु पूर्व, उत्तर, या पूर्वोत्तर दिशा में अध्यासीन होता है। यदि एक या दो शिष्य हों तो वे गुरु के दक्षिण ओर बैठते हैं। यदि अधिक शिष्य हों तो वे अवकाश के अनुसार ही बैठते हैं। तत्पश्चात् शिष्य गुरु के चरण स्पर्श करके **अधीहि भोः** (“हे गुरु, सिखाइए”) कहते हैं और गुरु फिर ‘ॐ’ यह प्रकृष्ट शब्द उत्त्वारित करते हैं। यह प्रकृष्ट शब्द या ध्वनि (**प्रस्वार**) तीन मात्राओं वाली (**त्रिमात्र**) और उदात्त होती है। अथवा यह चार मात्राओं वाली (चतुर्मात्र) और अनुदात्त पूर्वार्ध वाली होती है। अथवा यह छः मात्राओं वाली (षण्मात्र) और द्विःस्वर (दोहरे स्वर वाली) होती है। प्रातिशाख्य के अनुसार यह प्रस्वार शिष्य और गुरु के लिये स्वर्ग का नित्य द्वार है, वरिष्ठ **ब्रह्म** है, और स्वाध्याय का मुख (प्रारम्भ) है।

संस्कृत में स्वर शब्द के ध्वनि, अच् वर्ण, वैदिक स्वर, और संगीत का सुर—ये कई अर्थ हैं। संगीत के सुरों के लिये हिन्दी में प्रयुक्त सुर शब्द स्वर का ही तद्भव रूप है। **प्रस्वार** शब्द **स्वर** से आया है और इस सन्दर्भ में स्वर का अर्थ है ध्वनि। स्वर शब्द ही बिना किसी अर्थ परिवर्तन के प्रज्ञादि अण् प्रत्यय के परे होने पर **स्वार** बन जाता है। ऐसे शब्दों को संस्कृत में **प्रज्ञादि** कहते हैं। **प्र** उपसर्ग का अर्थ है प्रगत, प्रकृष्ट, या श्रेष्ठ। यथा प्रगत या प्रकृष्ट आचार्य को **प्राचार्य** कहा जाता है। इसी प्रकार प्रगत या श्रेष्ठ स्वर (ध्वनि) ही **प्रस्वार** है।

ॐ प्रकृष्ट ध्वनि क्यों है? क्योंकि इस ध्वनि को ब्रह्म माना गया है। ॐ न केवल ब्रह्म का नाम है (१९), अपितु शब्दब्रह्म (२८) के रूप में ॐ ब्रह्म ही है।

भारतीय संगीत परम्परा में **प्रस्वार** एक संज्ञा है। भरतमुनि के **नाट्यशास्त्र** में अष्टकल वर्णानुकर्ष (आठ पाद के अन्त की मात्राओं के वर्णों को अगले पाद में दुहराना) को **प्रस्वार** कहते हैं। अभिनव गुप्त की **अभिनवभारती** टीका में प्रस्वार शब्द को **प्रकर्षेण स्वरणं शब्दस्य** (“शब्द का प्रकर्षपूर्वक स्वरण”) कहकर समझाया गया है। संगीत में **प्रस्वार** अष्टकल धुन को स्वीचने को कहते हैं, और संयोगवश ॐ को भी तीन मात्राओं तक स्वींचा जाता है (१४)।

परम्परा

वैदिक वर्णविज्ञान, भाष्या

व्युत्पत्ति

√स्वर् + घ → स्वर; स्वर + अण् → स्वार; प्र + स्वार → प्रस्वार।

√स्वर् ► शब्द करना; घ ► करण अर्थ में प्रत्यय; अण् ► स्वार्थ में प्रज्ञादि प्रत्यय। प्र ► प्रकृष्ट, उत्तम।

उद्धरण

प्रस्वार त्रिमात्र होता है। प्रस्वार अर्थात् वह ओंकार शब्द।

—ऋग्वेद प्रातिशाख्य, तत्रत्य टीका

(७८)

रस

अर्थ

१ सार तत्त्व २ जल ३ पौधों का रस या अमृत ४ ब्रह्म ५ शृङ्गार आदि नव रस, स्थायी भाव  
६ रसना द्वारा ग्राह्य छः रस।

व्याख्या

शाङ्खायन गृह्य सूत्र में ॐ को रस कहा गया है। जैमिनीय ब्राह्मण का वचन है कि ॐ वाक् (वैदिक वाणी) का रस है। छान्दोग्य उपनिषद् में ॐ का वर्णन इस प्रकार है—“इन भूतों (जीवों) का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है, जलों का रस ओषधियाँ हैं, ओषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाक् (वाणी) है, वाक् का रस ऋक् (वैदिक वाणी) है, ऋक् का रस साम (सामवेद) है, और साम का रस उद्गीथ (ॐ) है।” उपनिषद् आगे कहती है कि ॐ रसों में रसतम (श्रेष्ठ रस) है।

रस का अर्थ जिह्वा द्वारा ग्राह्य षड्रस (छः रस) भी है। क्योंकि जल रसों का मूल तत्त्व माना गया है, जल भी रस कहलाता है। महाभारत में पितर और ऋषि से कहते हैं कि सभी रस आपोमय (जलमय) हैं। जलाभिमानि वैदिक देवताओं की आपस् संज्ञा है। ऋग्वेद में कई सूक्तों के देवता आपस् हैं। एक प्रसिद्ध संध्या मन्त्र में ॐ को आपस् कहा गया है। मन्त्र में प्राप्त ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म इस वाक्य का अर्थ है “ॐ आपस्, ज्योति, रस, अमृत, और ब्रह्म है।”

पौधों और वृक्षों के प्राणदायक रस और अमृत को भी संस्कृत में रस कहते हैं। यही कारण है कि सोम के रस को सोमरस कहते हैं। सोमरस का अर्थ अमृत भी समझा गया है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि वे रसात्मक (वृक्षरस या अमृत स्वरूप) चन्द्रमा बनकर सभी ओषधियों का पोषण करते हैं।

रस का एक अर्थ ब्रह्म भी है जो अलौकिक आनन्द का स्रोत है। तैत्तिरीय उपनिषद् कहती है कि ब्रह्म निश्चित रूप से रस है—रसो वै सः। ब्रह्म के रूप में ॐ (१९) आनन्दमय रस है।

रस शब्द का एक और अर्थ है साहित्य में प्रसिद्ध नौ स्थायी भाव—शृङ्गार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, और शान्त। शान्त, घोर, और मूढ—इन तीन अवस्थाओं (३७) के सदृश ॐ नौ रसों का प्रतीक है।

जैसा कि पहले कहा गया है, रस का एक और अर्थ है जिह्वा से ग्राह्य षड्रस—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण (नमकीन), कटु (कड़वा), तिक्त (तीखा), और कषाय (कसैला)। गीता में श्रीकृष्ण एक ही श्लोक में कहते हैं कि वे जलों में रस हैं, जिसको छः जिह्वा द्वारा ग्राह्य रस समझा जा सकता है, और सभी वेदों में प्रणव (ॐ) हैं।

परम्परा

वेद, उपनिषद्, गृह्य सूत्र, भाष्य।

व्युत्पत्ति

रस् + घञ् → रस।

√रस् ► स्वाद लेना; घञ् ► कर्म के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथ, वाक् ब्रह्म है और ॐ [उसका] रस है। रस से मनुष्य इस वाणी को प्रसन्न करता है।

—जैमिनीय ब्राह्मण

उद्गीथ रसों में रसतम (श्रेष्ठ रस) है।

—छान्दोग्य उपनिषद्

वारुणी ऋचा या रस से जलों में आहुति देनी चाहिये। 'रस से' अर्थात् वेदों के रस-स्वरूप प्रणव से।

—शाङ्खायन गृह्य सूत्र, तन्नत्य टीका



(७९)

रुद्र

अर्थ

१ ऋषियों द्वारा शीघ्र जाना जाने वाला २ पापियों को रुलाने वाला ३ अग्निदेव ४ एकादश रुद्र ५ शिव ६ विष्णु ७ हनुमान्।

व्याख्या

ॐ का रुद्र यह नाम *अथर्वशिर उपनिषद्* में प्राप्त होता है। उपनिषद् कहती है कि ॐ रुद्र कहलाता है क्योंकि अन्य भक्तों को छोड़कर केवल ऋषियों के द्वारा इसका स्वरूप द्रुत (शीघ्र) उपलब्ध होता है। *दीपिका टीका* के अनुसार ऋषि शब्द का अभिप्राय ज्ञानियों से है। उपनिषद् यह इङ्गित करती है कि रुद्र शब्द का रु ऋषि से आता है और द्र द्रुत से आता है। ऋ का रु और द्रु का द्र आदेश रुद्र शब्द को पृषोदरादिगण में गिनकर समझे जा सकते हैं।

*उणादि सूत्र* के अनुसार रुद्र शब्द  $\sqrt{\text{रुद्र}}$  (“रोना”) धातु के प्रेरणार्थक रूप और र प्रत्यय से व्युत्पन्न है। एतदनुसार रुद्र का अर्थ है “[किसी को] रुलाने वाला”। *उणादि सूत्र* पर टीकाओं के अनुसार रुद्र वह है जो पापियों या संसारियों को रुलाता है। ये दोनों भाव अन्यत्र भी उक्त हैं। *गीता* में कृष्ण अपने आप को ॐ (४७) बताते हैं और कहते हैं कि वे दुष्कृतों (पापियों) के विनाश के लिये अवतार लेते हैं। ॐ को भी *भवनाशन* कहा गया है (७७), जिसका अर्थ है सांसारिक भाव का नाश करने वाला।

ॐ का अग्नि से तादात्म्य कहा गया है (३), और अग्नि को भी रुद्र कहते हैं। इस नाम का कारण यजुर्वेद की *तैत्तिरीय संहिता* में बताया गया है। एक बार असुरों पर विजय प्राप्त कर देवों ने जीते हुए वसु (धन) का अग्नि में निधान किया ताकि भविष्य में असुरों से वसु को बचाया जा सके। उस धन को आत्मसात् करने की इच्छा से अग्नि ने पलायन किया। देवों ने अग्नि से बलात् धन लेने की इच्छा से अग्नि का पीछा किया। अग्नि रोये और इसलिये रुद्र ( $\sqrt{\text{रुद्र}}$  धातु, “रोना”, से) कहलाए। अग्नि के अश्रु रजत (चाँदी) बन गए। इस कारण से यज्ञ में अग्नि को चाँदी की आहुति नहीं दी जाती।

रुद्र शब्द से रुद्र नामक एकादश वैदिक देवता भी अभिप्रेत हैं। कई वैदिक सूक्तों के देवता एकादश रुद्र हैं। *उणादि सूत्र* का अनुसरण करते हुए *अमर कोश* पर *व्याख्या सुधा* टीका कहती है कि असुरों को रुलाने वालों को रुद्र कहते हैं। ॐ का अनेक वैदिक देवताओं से तादात्म्य दिखाया गया है, और इस नाम से ॐ को एकादश रुद्र देवता भी समझा जा सकता है।

रुद्र का एक अर्थ शिव भी है और यह *विष्णु सहस्रनाम* में विष्णु का भी नाम है। ॐ को अन्यत्र शिव और विष्णु बताया गया है (३९, १०७)। साथ ही, हनुमान् को भी रुद्र (शिव) का अवतार कहा

गया है। *विनयपत्रिका* में तुलसीदास हनुमान् को **रुद्र-अवतार** कहते हैं।

ऋग्वेद के १.११४.१ मन्त्र के भाष्य में सायण रुद्र शब्द की पाँच और व्युत्पत्तियाँ देते हैं जिनके अर्थ हैं—(१) सबको अन्तकाल पर रुलाने वाला (२) संसार रूपी दुःख का विनाश करनेवाला (३) उपनिषदों का प्रतिपाद्य (४) उपासकों को आत्मविद्या देने वाला और (५) अन्धकार का विदारण करने वाला। ये पाँच अर्थ ॐ के सन्दर्भ में भी समझे जा सकते हैं।

परम्परा

उपनिषद्।

व्युत्पत्ति

√रुद् + णि + रक् → रुद्र।

√रुद् ► रोना; णि ► प्रेरणार्थक प्रत्यय; रक् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

अथ, ॐ रुद्र क्यों कहलाता है? क्योंकि अन्य भक्तों के द्वारा नहीं अपितु (केवल) ऋषियों के द्वारा शीघ्र इसका स्वरूप प्राप्त होता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

(८०)

## सर्वपावन

अर्थ

१ सब को पवित्र करने वाला २ अग्नि।

व्याख्या

लक्ष्मी तन्त्र में ॐ का **सर्वपावन** नाम उल्लिखित है। सर्व का अर्थ है सब और √पू धातु से उत्पन्न पावन शब्द का अर्थ है पवित्र या शुद्ध करने वाला। पवित्र (शुद्धीकरण का साधन या शुद्ध) और पवन (वायु) शब्द भी √पू धातु से उत्पन्न हैं।

योग की परम्परा में ॐ को पावन माना गया है। पतञ्जलि के योग सूत्र के अन्तर्गत क्रिया योग में स्वाध्याय की चर्चा है। स्वाध्याय का अर्थ स्वयं अध्ययन भी है और जप भी। व्यासभाष्य के अनुसार योग सूत्र में प्रयुक्त स्वाध्याय शब्द का अर्थ है प्रणव आदि पवित्र मन्त्रों का जप अथवा मोक्ष शास्त्र का अध्ययन। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में भी ॐ को पावन कहा गया है। स्मृति कहती है कि ॐ के जप से पाप जल जाता है और प्राणायाम (जिसका अभ्यास ॐ के साथ होता है, पृ. २४) से मल जल जाता है।

**सर्वपावन** अग्नि को भी कहते हैं। त्रिधाम (३) और रुद्र (७९) आदि नामों से स्पष्ट है कि ॐ को त्रेताग्नि या अग्नि माना गया है। अग्नि को सब जीवों और वस्तुओं को पवित्र करने वाला माना जाता है। स्कन्द पुराण और शिव पुराण में प्राप्त एक श्लोक के अनुसार सभी अपावन तत्त्व (जीव या वस्तु) अग्नि के संसर्ग से क्षण भर में पावन हो ही जाते हैं, इसलिये अग्नि को पावक कहा जाता है।

सर्वपावन और इसके सदृश शब्द हिन्दू ग्रन्थों में अनेक देवताओं के लिये प्रयुक्त हुए हैं। लिङ्ग पुराण में प्राप्त शिव सहस्रनाम में **सर्वपावन** शिव का नाम है। आनन्द रामायण के राम सहस्रनाम में **सर्वपावन** राम का नाम है। सर्वपावन शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप है सर्वपावनी। महाभारत के अनुशासन पर्व में कृष्ण पार्वती को सर्वपावनी कहते हैं, जबकि विष्णु पुराण में इन्द्र लक्ष्मी को इस शब्द से संबोधित करते हैं। स्कन्द पुराण और पद्म पुराण में नर्मदा नदी को सर्वपवित्रपावने कहकर संबोधित किया गया है। भागवत पुराण में कृष्ण को सब लोकों का पावन (**पावनः सर्वलोकानाम्**) कहा गया है। इसी प्रकार रामायण में अगस्त्य ने राम की सब जीवों का पावन (**पावनः सर्वभूतानाम्**) कहकर स्तुति की है।

ॐ **सर्वपावन** है, अतः यह पतितपावन (पतितों को भी पवित्र करने वाला) भी है। गर्ग संहिता में कृष्ण को पतितपावन कहा गया है। इसका कारण है कि कृष्ण ने कंस के आदेश पर उनको मारने हेतु आई पूतना को भी मुक्ति प्रदान की। पतितपावन राम का प्रसिद्ध नाम है—

विनयपत्रिका में तुलसीदास इसे राम का नाम कहते हैं। रघुपति राघव राजा राम भजन में भी राम को पतितपावन कहा गया है। इस भजन को महात्मा गाँधी ने लोकप्रिय बनाया था और इसे पण्डित दत्तात्रेय विष्णु पुलस्कर ने अपने गान्धर्व स्वर में गाकर अमर कर दिया था।

परम्परा

तन्त्र।

व्युत्पत्ति

सर्व + पावन → सर्वपावन।

सर्व ► सब, सब कुछ; पावन ► पवित्र करने वाला।

उद्धरण

ओंकार सर्वपावन कहलाता है।

—लक्ष्मी तन्त्र

(८९)

## सर्वविद्

अर्थ

१ सर्वव्यापी, सर्वत्र वर्तमान २ सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला ३ सर्वप्राप्तकर्ता, सब कुछ पाने वाला  
४ सर्व का ज्ञान, पूर्ण ज्ञान।

व्याख्या

वैजयन्ती कोश में ॐ का **सर्वविद्** यह नाम प्राप्त होता है। **सर्वविद्** सर्व (सब, सब-कुछ) और विद् शब्दों का समास है। विद् शब्द तीन भिन्न-भिन्न धातुओं से निष्पन्न किया जा सकता है।

(१) प्रथम धातु (√विदँ सत्तायाम्) का अर्थ है “होना”। इसी धातु से विद्यमान (“होता हुआ”) शब्द उत्पन्न हुआ है। तदनुसार **सर्वविद्** का अर्थ है सब में होने या रहने वाला अर्थात् **सर्वव्यापी** या सर्वत्र वर्तमान। तैत्तिरीय उपनिषद् कहती है, “ॐ—यह ये सब हैं” ॐ के विभु (१०६) और विश्व (१०८) नामों का भी यही अर्थ है।

(२) द्वितीय धातु (√विदँ ज्ञाने) का अर्थ है “जानना”। इसी धातु से विद्वान् (जाननेवाला, प्राज्ञ या पण्डित) शब्द उत्पन्न हुआ है। तदनुसार **सर्वविद्** का अर्थ है सब कुछ जाननेवाला या **सर्वज्ञ**। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ॐ का एक नाम **सर्वज्ञ** भी है।

(३) तृतीय धातु (√विदँ लाभे) का अर्थ है प्राप्त करना या युक्त होना। इसी धातु से गोविन्द (गायों से युक्त अर्थात् श्रीकृष्ण) शब्द उत्पन्न हुआ है। तदनुसार **सर्वविद्** का अर्थ “सब कुछ प्राप्त करने वाला” या “सब कुछ पाने वाला”। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार ॐ शब्द √आप् धातु (“प्राप्त करना”) से उत्पन्न हुआ है (१७)।

विद् की ही तरह वेद शब्द भी इन तीन धातुओं से और √विदँ विचारणे धातु से सिद्ध किया जा सकता है। √विदँ विचारणे धातु का अर्थ है विचार करना। अतः वेद शब्द के अनेक अर्थ हैं यथा “सर्वदा विद्यमान”, “ज्ञान का साधन”, “ब्रह्म प्राप्त करने का साधन”, और “विचार का अधिकरण या साधन”। ये सभी अर्थ वेदों के हैं क्योंकि वेद अपौरुषेय (नित्य), वैचारिक दर्शन के भण्डार, और ज्ञानप्राप्ति और ब्रह्मसाक्षात्कार के साधन माने गये हैं।

√विदँ ज्ञाने से उत्पन्न विद् शब्द का अर्थ ज्ञान भी है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एकतीसरे सूक्त के अन्तिम मन्त्र में प्रयुक्त विद् शब्द का अर्थ सायण भाष्य में ज्ञान दिया गया है। यहाँ सर्वापहारी लोप वाला विवप् प्रत्यय भाव के अर्थ में हुआ है। तदनुसार **सर्वविद्** का अर्थ है सब का ज्ञान अथवा पूर्ण ज्ञान। ॐ ब्रह्म का नाम है और ऐतरेय उपनिषद् का कहना है कि प्रज्ञानं ब्रह्म (“ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञान से युक्त है”)।

अन्य देवताओं के लिये भी **सर्वविद्** नाम का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में कल्याणी देवी और इन्द्र को **सर्वविद्** कहा गया है। इसी प्रकार **विष्णु सहस्रनाम** में विष्णु को दो बार **सर्वज्ञ** कहा गया है।

परम्परा

कोश

व्युत्पत्ति

सर्व + √विद् + विवप् → सर्वविद्।

**सर्व** ► १ सब कुछ २ पूर्ण, समस्त; **√विद्** ► १ होना २ जानना ३ प्राप्त करना; **विवप्** ► कर्ता या भाव के अर्थ में सर्वापहारी लोप वाला प्रत्यय।

उद्धरण

**ओंकार सर्वविद्** कहलाता है।

—वैजयन्ती कोश

पर्याय से **ओंकार सर्वज्ञ** [नाम से] जाना गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(८२)

## सर्वव्यापी

अर्थ

सर्वत्र व्यापक, सब को व्याप्त करने वाला।

व्याख्या

अनेक हिन्दू शास्त्रों के साथ-साथ *नैगम कोश* में ॐ को **सर्वव्यापी** कहा गया है। *सर्व* का अर्थ है सब-कुछ और *व्यापी* का अर्थ है व्याप्तकर्ता या व्यापक। *व्यापी* शब्द वि + √आप् (“व्याप्त करना”, “भरना”) धातु से निष्पन्न है। इसी धातु से *विष्णु सहस्रनाम* के *व्याप्त* और *व्यापी* नाम उत्पन्न हैं। ॐ शब्द की ही एक व्युत्पत्ति √आप् धातु से है (१७)।

ॐ सर्व देशों, वस्तुओं, और कालों का व्यापक माना जाता है। *गोपथ ब्राह्मण* के अनुसार प्रजापति ने देश की सभी दिशाओं, काल की सभी ऋतुओं, और सभी वस्तुओं (भूतों, लोकों, विषयों, इन्द्रियों, आदि) का निर्माण ॐ की मात्राओं से ही किया था। *अथर्वशिर उपनिषद्* कहती है कि ॐ लोकों को वैसे ही ओत-प्रोत करता है जैसे तेल पिसे हुए तिल के पिण्ड को, अर्थात् अभिन्न रूप से। *योगी याज्ञवल्क्य स्मृति* कहती है कि ॐ शरीर, विश्व (ब्रह्माण्ड), और विद्यास्थानों को व्याप्त करके रहता है।

*श्वेताश्वतर उपनिषद्* में **सर्वव्यापी** शब्द तीन बार ब्रह्म के लिये प्रयुक्त हुआ है। प्रथम बार उपनिषद् कहती है कि जैसे घी दूध को व्याप्त करता है वैसे ब्रह्म सबको व्याप्त करता है। दूसरी बार **सर्वव्यापी** कहकर उपनिषद् शिव का वर्णन करती है। इसी कारण से **सर्वव्यापी** शिव का नाम माना गया है। शिव का एक और सट्श नाम है *जगद्-व्यापी* (जगत् को व्याप्त करने वाला); यह *शिवतत्त्वहस्य* (४७) में व्याख्यायित शिव के १०८ नामों में अन्यतम है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण, कोशा

व्युत्पत्ति

सर्व + वि + √आप् + णिनि → सर्वव्यापी।

**सर्व** ► सब कोई, सब-कुछ; **वि** + √**आप्** ► व्याप्त करना, भरना, फैलना; **णिनि** ► ताच्छील्य (स्वभाव) के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथ, यह **सर्वव्यापी** क्यों कहलाता है? क्योंकि उच्चारण करने मात्र पर यह सबको व्याप्त करते हैं जैसे तेल पिसे हुए तिल के पिण्ड को और ओत-प्रोत होकर शान्त रूप प्राप्त कर अव्यतिषक्त (अभिन्न) होता है—अतः **सर्वव्यापी** कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ओंकार **सर्वव्यापी** कहलाता है ... यह शरीर, विश्व, और विद्यास्थानों को व्याप्त कर सर्वत्र रहता है इसलिये **सर्वव्यापी** कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ब्रह्म को **सर्वव्यापी** ओर अव्यय **प्रणव** जानो।

—लिङ्ग पुराण

प्रणव मन्त्र **सर्वव्यापी** कहा जाता है।

—नैगम कोश



(८३)

सत्य

अर्थ

१ ऋत, सच २ सत्त्वा, वास्तविक ३ सज्जनों के लिये हितकारी ४ प्राण, अन्न, और आदित्य  
५ अर्थ या गन्तव्य की ओर ले जानेवाला

व्याख्या

ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों में ॐ को **सत्य** कहा गया है। तन्त्र में **सत्य** ॐ का एक नाम है। **सत्य** का अर्थ सत्त्वा भी होता है, यथा **सत्य वचन** में, और सत्त्वाई भी होता है, यथा **सत्यमेव जयते** में। वैदिक ग्रन्थों में दोनों अर्थों में ॐ को **सत्य** कहा गया है—ॐ सत्य अक्षर भी है और सत्य भी।

**सत्य** शब्द की व्युत्पत्ति **सत्** शब्द और **य** प्रत्यय से हुई है। **सत्** शब्द के अनेक अर्थ हैं यथा सत्त्वाई, विद्वान् या सुधी (कोविद), साधु व्यक्ति, विद्यमान, प्रशस्त (उत्तम), अभ्यर्हित (पूजित), धीर, और मान्य। **य** प्रत्यय का अर्थ है दक्ष या हितकारी। **सत्य** का अर्थ है सत्त्वाई में दक्ष (सत्त्वा) या सत्त्वाई के लिये हितकारी। ॐ का **सत्यवाक्य**, **सत्यसंध**, और **सत्यपराक्रम** राम से तादात्म्य बताया गया है (२०); अतः ॐ सत्त्वा है। ॐ **गुणजीवक** है (६७), अतः यह **सत्** (जो एक गुण है) का पोषक है। अथवा विद्वान्, साधु, उत्तम, अभ्यर्हित, धीर, और मान्य जनों के लिये जो हितकारी वह **सत्य** है। इस सन्दर्भ में ॐ **सत्य** है क्योंकि ऐसा कहा गया है कि ॐ ऐसे महात्माओं को विशिष्ट ज्ञान प्रदान करता है (३७)।

ऐतरेय आरण्यक में **सत्य** (**सत्य** की वैकल्पिक वर्तनी) का एक और अर्थ दिया है। **सत्** प्राण है, **त्** अन्न है, और **य** सूर्य है। यहाँ **सत्य** का अभिप्राय है प्राण, अन्न, और सूर्य के **त्रिवृत्** (७७) से। अन्यत्र भी ॐ को प्राण और अन्न (४२) अथवा प्राण और सूर्य (७७) बताया गया है।

यास्क कृत निरुक्त के अनुसार शाकटायन ने **सत्य** शब्द को **सत्** और **य** (√इ धातु (“जाना”) के णिजन्त रूप) से निष्पन्न किया है। तदनुसार दुर्गाचार्य **सत्य** की व्याख्या ऐसे करते हैं—**सत्य** वह है जो अर्थ या लक्ष्य (**सत्**) की ओर ले जाता है। **सत्य** के रूप में ॐ मोक्ष पुरुषार्थ का साधन है। ॐ का एक अन्य नाम है **तार** (८७), जिसका अर्थ भी मोक्ष का साधन है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म को **सत्य** कहकर वर्णित किया गया है। शब्द **रत्नावली** के अनुसार **सत्य** राम का नाम है। **विष्णु सहस्रनाम** में विष्णु को तीन बार **सत्य** कहा गया है और विष्णु के छः अन्य नाम **सत्य** से प्रारम्भ होते हैं। **भागवत पुराण** के प्रथम श्लोक का अन्त है **सत्यं परं धीमहि**, अर्थात् हम परम सत्य (श्रीकृष्ण) का ध्यान करते हैं।

परम्परा

वेद, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

सत् + यत् → सत्या

सत् ► १ सत्त्वाई २ विद्वान्, सुधी ३ साधु ४ विद्यमान ५ प्रशस्त, उत्तम ६ अभ्यर्हित, पूजित ७ धीर  
८ शस्त, मान्य; यत् ► साधु (दक्ष) या हितकारी के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

ॐ ऐसा ही प्रतिगार करना चाहिये, वह निश्चित ही सत्य है, उसे देव जानते हैं।

—शतपथ ब्राह्मण

जो यह ॐ है, वह सत्य अक्षर है।

—जैमिनीय ब्राह्मण

ॐ यह सत्य है, न यह अनृत (असत्य) है।

—ऐतरेय आरण्यक

ओंकार सत्य कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान

(८४)

सेतु

अर्थ

१ [विनाश से बचने के लिये] मेंड या बाँध २ [संसार-सागर को पार करने हेतु] पुल ३ [ब्रह्म से] जुड़ने का साधन।

व्याख्या

कालिका पुराण में ॐ को मन्त्रों का सेतु कहा गया है। तन्त्रसार आदि तान्त्रिक ग्रन्थों में सेतु ॐ का नाम है। √सि धातु (“बाँधना”) से निष्पन्न सेतु शब्द का शाब्दिक अर्थ है बाँधने वाला या रोकने वाला। खेतों की सीमा पर बने मिट्टी के मेंड को सेतु कहते हैं क्योंकि वह खेतों को घेरने वाली सीमा है। एक बाँध को भी सेतु कहते हैं क्योंकि वह जल के प्रवाह को रोकता है। पुल को भी सेतु कहते हैं क्योंकि वह एक जल-निकाय के दो किनारों को बाँधता (जोड़ता) है। भारत के रामेश्वरम् द्वीप और श्रीलङ्का के मन्नार द्वीप को जोड़ने वाली चूनापत्थर की शृङ्खला को रामसेतु (राम का पुल) कहते हैं।

ॐ एक मेंड के जैसे वैदिक अध्ययन को संपुटित करता है और विद्या के विनाश को रोकता है, अतः ॐ सेतु है। मनुस्मृति कहती है कि वेदाध्ययन के आदि और अन्त में प्रणव का उच्चारण करना चाहिये—प्रणव से प्रारम्भ न हो तो अध्ययन झुत हो जाता है (बह जाता है) और प्रणव से अन्त न हो तो अध्ययन विशीर्ण (छिन्न-भिन्न) हो जाता है। अथवा, ॐ परब्रह्म-स्वरूप है इसलिये सेतु है—ब्रह्म को बृहद् आरण्यक उपनिषद् में समस्त लोकों के असंभेद (विनाश की रोक) के लिये सेतु कहा गया है।

ॐ तार (८९) अर्थात् संसार-सागर को पार करने का साधन है। अतः ॐ एक पुल के समान है, इसलिये भी वह सेतु है। जलनिकाय को पार करने का रूपक शिव पुराण में प्रणव की एक नाव के रूप में व्याख्या में भी ध्वनित है (३२)।

अन्ततः एक पुल की भाँति अमृत, ब्रह्म, या एक मन्त्र के देवता से बाँधने के कारण भी ॐ सेतु है। ब्रह्मस्वरूप ॐ (१९) जीव को परम आनन्द से जोड़ता है। मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्म को अमृत का सेतु कहा गया है। मोक्ष के साधन (८९) के रूप में ॐ जीवात्मा को परमात्मा (ब्रह्म) से जोड़ता है। एक मन्त्र के बीज (४९) के रूप में ॐ उस मन्त्र के देवता से जोड़ने वाला सेतु (पुल) है। कालिका पुराण के अनुसार स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त मन्त्र ॐ के लिये ॐ स्वयं सेतु है। इस प्रकार ॐ सेतु का भी सेतु है, ठीक वैसे ही जैसे वह प्राण का भी प्राण है (३६)।

विष्णु सहस्रनाम में विष्णु को जगतः सेतु (विश्व का सेतु) कहा गया है। भाष्यों में इसका अर्थ संसार को तारने का हेतु, वर्णाश्रमों में असंभेद (असांकर्ष्य) का कारण, धर्मसांकर्ष्य का विरोधी, या

अङ्गो को जोड़ने वाला मेरुदण्ड (पृष्ठवंश) बताया गया है।

परम्परा

पुराण, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

√सि + तुन् → सेतु।

√सि ► बाँधना, जोड़ना; तुन् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

प्रणव मन्त्रों का सेतु है; उसका सेतु प्रणव (स्वयं) कहा गया है।

—कालिका पुराण

सेतु (अर्थात्) प्रणव।

—तन्त्र सार

(८५)

शब्द

अर्थ

१ पद (सार्थक वर्णसमुदाय) २ ध्वनि, कोई भी स्वर

व्याख्या

अमृतनाद उपनिषद् में ॐ को शब्द कहकर अभिहित किया गया है। अनेक ग्रन्थों में ॐ को शब्दब्रह्म बताया गया है। शब्दब्रह्म ही शाब्दिक (शब्द से संबन्धित) कहलाने वाले वैयाकरणों का परम दैवत है। मैत्री उपनिषद्, गीता, विविध पुराण (भागवत, अग्नि, विष्णु, और लिङ्ग), और महाभारत आदि अनेक हिन्दू ग्रन्थों में शब्दब्रह्म का उल्लेख है। शब्दब्रह्म की सुव्यवस्थित और अतीव सुन्दर प्रस्तुति भर्तृहरि के व्याकरण और दर्शन ग्रन्थ वाक्यपदीय में की गई है। वाक्यपदीय के सर्वप्रथम श्लोक में भर्तृहरि कहते हैं कि अनादि और अनन्त अक्षर ब्रह्म शब्द तत्त्व (शब्द रूप) है और अर्थ के भाव से विवृत (विस्तृत) होता है।

शब्द पद √शब्द् (“स्वर करना”) धातु से उत्पन्न है और इसका सामान्य अर्थ है एक पद या सार्थक ध्वनि (वर्ण समुदाय)। व्याकरण शास्त्र को शब्दानुशासन (शब्दों का शिक्षण) कहते हैं। ॐ के संदर्भ में शब्द का अर्थ है प्रकृष्ट शब्द। जिस प्रकार ॐ प्रकृष्ट स्वर (७७) है उसी प्रकार वह प्रमुख या प्रकृष्ट शब्द भी है।

शब्द का अर्थ वाणी या कोई भी स्वर (ध्वनि) भी है। ॐ को वाणी का सार (७०) या रस (७८) और प्रमुख स्वर (४७) माना गया है। गीता में कृष्ण अपने को ॐ और शब्द दोनों कहते हैं—“मैं सभी वेदों में प्रणव हूँ और आकाश में शब्द हूँ”

संस्कृत में शब्द से सम्बन्धित धातुएँ दो प्रकार की हैं—कुछ धातुओं का अर्थ है व्यक्त वाक् (सार्थक वाणी) बोलना और अन्य धातुओं का अर्थ है अव्यक्त शब्द (निरर्थक वाणी या ध्वनि) करना। ॐ शब्द और मनुष्यों की व्यक्त वाक् के रूप में प्रणव व्यक्त वाक् या सगुण है। निरर्थक वाणी और ध्वनियों के रूप में प्रणव अव्यक्त शब्द या निगुण है। शब्दसामान्य (वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक) होने से प्रणव सगुण और निगुण दोनों है, जैसा पहले कहा जा चुका है (१३)।

लिङ्ग पुराण में सूत शिव को ही शब्दब्रह्म और ॐ बताते हैं। पुराण वाचन के पूर्व महादेव शिव को नमस्कार करते हुए सूत कहते हैं कि शिव शब्दब्रह्मतनु (शब्दब्रह्म जिनका शरीर है) और ओंकाररूप (ओंकार जिनका रूप है) हैं। लिङ्ग पुराण के ही अन्तर्गत शिव सहस्रनाम में शब्दब्रह्म शिव का एक नाम भी है। इसके अतिरिक्त इसी लिङ्ग पुराण में देवगण नरसिंह को शब्दब्रह्म कहकर नमन करते हैं।

परम्परा

उपनिषद्, व्याकरण।

व्युत्पत्ति

शब्द् + घञ् → शब्द।

√शब्द् ► ध्वनि करना; घञ् ► भाव या कर्म के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

एक उँगली से एक नासिका पुट (नथुने) को बन्द करके वायु (श्वास) खींचकर अग्नि (प्राण) को अन्दर धारण करना चाहिये और शब्द (ॐ) का ही चिन्तन करना चाहिये।

—अमृतनाद उपनिषद्

(८६)

## श्रुतिपद

अर्थ

१ वेदों का मूल २ संगीत की २२ श्रुतियों का मूल

व्याख्या

तेरहवीं शताब्दी के संगीतशास्त्र के ग्रन्थ *संगीत रत्नाकर* में प्रयुक्त *श्रुतिपद* शब्द को कलानिधि टीका में ॐ समझाया गया है। *संगीत रत्नाकर* के प्रथम पद्य में हृदय-पङ्कज में स्थित स्वयं प्रकाशमान *श्रुतिपद* का उल्लेख है। *कलानिधि* टीका समझाती है कि *श्रुतियों* अर्थात् वेदों का पद अर्थात् उत्पत्तिस्थान होने से *श्रुतिपद* ॐ है। यह व्याख्या *गोपथ ब्राह्मण* के अनुसार है, जिसमें ब्रह्मा द्वारा ॐ की मात्राओं से वेदों की प्राप्ति का उल्लेख है (८)।

संगीत के सन्दर्भ में *श्रुति* का अर्थ है स्वर नाम से जाने जाने वाले संगीत के सुर। भारतीय संगीत परम्परा में २२ श्रुतियाँ (सप्तक के विभाग) मानी गयी हैं। इन श्रुतियों में ही सात स्वर (सुर) निहित हैं। आठवीं शताब्दी के संगीतशास्त्र के ग्रन्थ *बृहद्देशी* में नाद (नादब्रह्म) को स्वर का मूल कहा गया है—“नाद के बिना गीत (गायन) नहीं है, नाद के बिना स्वर नहीं है, नाद के बिना नृत्य नहीं है, अतः संपूर्ण विश्व नादात्मक (नादमय) है। नादब्रह्म के सिद्धान्त में शब्दब्रह्म (९८) के सिद्धान्त की अपेक्षा एक भाषातीत तत्त्व—संगीत—का वैशिष्ट्य है। नाद का ॐ से घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि नाद ॐ का पाँचवां अंश है (२६)। *नादबिन्दु उपनिषद्* के अनुसार ब्रह्म और *प्रणव* का साधन (योग) ही नाद है, जबकि अनेक अन्य स्रोतों में ॐ को ही नादब्रह्म कहा गया है। *संगीत रत्नाकर* में नादब्रह्म की वन्दना इस प्रकार है—“सभी भूतों का चैतन्य और जगत् के रूप में विवृत सदानन्द अद्वितीय नादब्रह्म की हम उपासना करते हैं। निश्चय ही नाद की उपासना से ब्रह्मा, विष्णु, और शिव—तीनों देव उपासित होते हैं क्योंकि ये तीनों नादात्मक (नाद से अभिन्न) हैं”

पुराणों में भी ब्रह्म और संगीत के इस सम्बन्ध का संकेत है। *भागवत पुराण* में नारद-व्यास संवाद में नारद मुनि अपने पूर्वजन्म की और अपने हरिकथा गाते हुए विचरण करने की कथा सुनाते हैं। नारद कहते हैं उनकी वीणा *स्वरब्रह्मविभूषित* है। टीकाओं के अनुसार *स्वरब्रह्म* का तात्पर्य है कि सात स्वर स्वयं ब्रह्मस्वरूप हैं।

परम्परा

संगीतशास्त्र, भाष्या

व्युत्पत्ति

श्रुति + पद → श्रुतिपद।

श्रुति ► १ वेद २ सप्तक का विभाजन करने वाली २२ श्रुतियाँ जिनमें सात स्वर निहित हैं; पद ► उत्पत्तिस्थान।

उद्धरण

श्रुतिपद—श्रुतियों या वेदों का पद या उत्पत्तिस्थान अर्थात् प्रणव (ॐ)।

—संगीत रत्नाकर पर कलानिधि टीका



(८७)

## शुक्ल

अर्थ

१ शब्द करने वाला या (शरीर को) वलान्त करने वाला २ शुद्ध, निष्पाप, श्वेत ३ मन का गन्तव्य ४ सरस्वती का निलय।

व्याख्या

अथर्वशिर उपनिषद् कहती है कि ॐ शब्द करता है (वलन्दते) और थकाता है (व्लामयति)। वलन्दते और व्लामयति क्रियाओं की धातुएँ क्रमशः √वलन्द् और √वल्म् हैं, जिनमें शुक्ल शब्द की वल् ध्वनि है। टीपिका टीका के अनुसार वलन्दते का अर्थ है ध्वनिरूप से व्यक्त होता है। टीका आगे कहती है कि ॐ उदात्त होने के कारण उच्चारण में प्रयत्न के अधिक्य से शरीर को थकाता है (वलान्त करता है)। अथवा ॐ दोषों और बन्धनों को वलान्त करता है। ॐ सबको पवित्र करने वाला है (सर्वपावन, पृ. ८०), अतः यह गुणों को जीवित करता है (गुणजीवक, पृ. ६७) और दाषों को वलान्त करता है। मोक्ष का साधन (८९) होने के कारण ॐ सांसारिक बन्धन को भी वलान्त करता है।

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि ओंकार को शुक्ल नाम से जानो क्योंकि यह वर्ण से शुक्ल (श्वेत) है, शुद्ध पद की ओर ले जाता है, और त्रिविध पाप को सुखा देता है। यह व्याख्या संस्कृत में शुक्ल शब्द के प्रसिद्ध अर्थों—निष्पाप, शुद्ध, और श्वेत—को ॐ संबद्ध करती है। अन्यत्र स्मृति कहती है कि ॐ का वर्ण श्वेत है।

अमरकोश पर व्याख्या सुधा टीका शुक्ल शब्द को √शुक् (“जाना”) धातु से निष्पन्न करती है। टीका कहती है कि जहाँ मन जाता है या आकृष्ट होता है वह शुक्ल है। मन को आकृष्ट करने के कारण (देखें दिव्य, पृ. ६१) ॐ शुक्ल है।

स्त्रीलिङ्ग शब्द शुक्ला सरस्वती का नाम है। ज्ञान की देवी सरस्वती को कुन्द (चमेली का पुष्प), इन्दु (चन्द्रमा), तुषार (हिम), और हार (मोतियों की माला) के समान धवल (श्वेत) कहा गया है। अतः नपुंसकलिङ्ग शब्द शुक्ल का एक और अर्थ निकलता है “वह जिसमें शुक्ला है”, अर्थात् सरस्वती का निवास या निलय। व्याकरण परम्परा में न्यास नामक टीका में समझाया गया है कि किस प्रकार शुक्ल (श्वेत) वर्ण से युक्त प्रासाद (भवन) भी शुक्ल कहे जाते हैं और ऐसे प्रासादों से युक्त नगर भी शुक्ल कहलाता है। इसी प्रकार शुक्ल को शुक्ला (सरस्वती) का निलय समझा जा सकता है। सर्वज्ञ (८१) नाम से जाने जानेवाले ॐ को सर्वज्ञान-संपन्न माना जाता है।

शुक्ल शब्द की संस्कृत व्याकरण में कोई व्युत्पत्ति नहीं है और यह शब्द उणादि सूत्र के एक निपातन (देखें पृ. १८) द्वारा प्राप्त होता है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

√कलन्द्, √क्लम् + णिच्, अथवा √शुक् से। यद्वा, शुक्ला + अच् → शुक्ल।

√क्लन्द् ▶ शब्द करना। √क्लम् ▶ थकना। णिच् ▶ प्रेरणार्थक प्रत्यय। √शुक् ▶ जाना। शुक्ला ▶ सरस्वती; अच् ▶ “यह इसका है” या “यह इसमें है” इस अर्थ में अर्श-आदि प्रत्यय।

उद्घरण

अथ, यह शुक्ल क्यों कहलाता है? क्योंकि उच्चारण करने मात्र से यह कलन्दिता होता है और क्लान्त करता है अतः यह शुक्ल कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ओंकार को शुक्ल जानो। यह वर्ण से शुक्ल (श्वेत) है, शुद्ध पद की ओर ले जाता है, और त्रिविध पाप को सुखाता है इसलिये शुक्ल कहा जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(८८)

सूक्ष्म

अर्थ

१ आणविक, महीन २ भेदकर बींधने वाला

व्याख्या

उपनिषद् और स्मृति ग्रन्थों में ॐ का **सूक्ष्म** नाम उल्लिखित है। *अथर्वशिर उपनिषद्* कहती है कि ॐ इसलिये **सूक्ष्म** कहलाता है क्योंकि उच्चारित होने मात्र पर सूक्ष्म होकर यह जापकों के शरीर में अधिष्ठित होता है और सभी अङ्गों का अभिस्पर्श करता है। यहाँ शरीर का तात्पर्य स्थूल शरीर से नहीं अपितु सूक्ष्म शरीर (या केवल सूक्ष्म) से है। कई हिन्दू दर्शनों में तीन शरीर माने गए हैं— (१) पाँच तत्त्वों से बना स्थूल शरीर; (२) मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, पञ्च प्राण, और दस इन्द्रियों से युक्त अदृश्य सूक्ष्म शरीर; और (३) कारण शरीर या आनन्दमय कोष।

*शिव पुराण* में ॐ को **अतिसूक्ष्म** (“अत्यन्त सूक्ष्म”) और **महार्थ** (“अत्यन्त स्थूल”) कहा गया है। एक ही ॐ एक ओर **सर्वव्यापी** (८२) और **अनन्त** (९३) और दूसरी ओर **अतिसूक्ष्म** कैसे है ? इसका उत्तर देते हुए *शिव पुराण* में कहा गया है कि ॐ वटवृक्ष (बरगद) के बीज के समान है। जिस प्रकार बरगद के छोटे से बीज में एक विशाल वृक्ष निहित रहता है उसी प्रकार **अतिसूक्ष्म** ॐ में **सर्वव्यापी** और **अनन्त** ॐ निहित है।

**सूक्ष्म** शब्द √सूच् धातु से निष्पन्न है जिसका प्राथमिक अर्थ है पेशुन्य (पीठ-पीछे निन्दा) करना। इस धातु का लक्ष्यार्थ है छेदना (बींधना) या सिलना। संस्कृत में सूई को **सूची** कहते हैं और यह शब्द भी √सूच् धातु से ही उत्पन्न है। एक सूई छेद भी करती है और सिलती भी है। वैदिक ग्रन्थों में ॐ को छेदने वाला और सिलने वाला कहकर वर्णित किया गया है। *सामवेद* की **जैमिनीय उपनिषद्** कहती है कि जिस प्रकार सूची से पलाश (पत्ते) संतृण्ण (सिले) होते हैं, उसी प्रकार ॐ से ये लोक संतृण्ण हैं। इसी प्रकार की तुलना करते हुए *छान्दोग्य उपनिषद्* कहती है कि जिस प्रकार शङ्कु (टहनी) से सभी पत्ते संतृण्ण होते हैं उसी प्रकार ॐ से समस्त वाणी संतृण्ण है। ये दोनों उपमाएँ ॐ के दो व्यतिरिक्त गुणों की ओर संकेत करती हैं—ॐ सूक्ष्म होते हुए भी व्यापक है क्योंकि यह वाणी और विश्व का छेदन करता है (उन्हें व्याप्त करता है) और एक सूई या टहनी की भाँति उन्हें साथ जोड़े रखता है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण।

व्युत्पत्ति

√सूच् + स्मन् → सूक्ष्म

√सूच् ► छेद करना, बीधना; स्मन् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय

उद्घरण

अथ, यह **सूक्ष्म** क्यों कहलाता है? क्योंकि उच्चारित होने मात्र पर यह **सूक्ष्म** होकर (जापकों के) शरीरों में अधिष्ठित होकर सभी अङ्गों का अभिस्पर्श करता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ॐ **सूक्ष्म** और अन्य पर्यायों द्वारा शास्त्रों में गाया जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ॐ **अतिसूक्ष्म** (अत्यन्त सूक्ष्म) और **महार्थ** (अत्यन्त स्थूल) है। यह वटवृक्ष के बीज की तरह जानने योग्य है।

—शिव पुराण

(८९)

तार

अर्थ

१ तारनहार, तारने वाला (मोक्ष प्रदान करने वाला) २ मोक्ष का साधन ३ मोक्षा

व्याख्या

अनेक ग्रन्थों में ॐ को *तार* कहा गया है। यह शब्द *तारसार उपनिषद्* के नाम में भी प्रयुक्त हुआ है। *तारसार* का अर्थ है *तार* (ॐ) का सारा *तार* शब्द  $\sqrt{तृ}$  धातु से उत्पन्न है जिसका अर्थ है तैरना या पार करना, जैसे एक नदी को पार करना (वाच्यार्थ) या सांसारिक सागर को पार करना (लक्ष्यार्थ)। हिन्दी की तैरना क्रिया और सिक्खों के पवित्र स्थल *तारन तारन* (“तैरने का साधन”) का नाम इस  $\sqrt{तृ}$  धातु से ही उत्पन्न हुए हैं। ॐ के *तार* नाम में इस धातु का लक्ष्यार्थ में ही प्रयोग है। *तार* का अर्थ है मोक्ष देने वाला, मोक्ष का साधन, या मोक्ष की क्रिया।

चूँकि ॐ परब्रह्म माना गया है (१९), यह जीवों को तारनेवाला मोक्ष का प्रदाता है। *तैत्तिरीय आरण्यक* (९७) और *तैत्तिरीय उपनिषद्* (१७) में ॐ को मोक्ष का साधन बताया गया है। अन्ततः ॐ को मोक्ष भी समझा गया है, क्योंकि मोक्ष के पश्चात् ॐ ही शेष रहता है। ॐ के नाम *अक्षर* (४७) का भी एक अर्थ मोक्ष है।

*विष्णु सहस्रनाम* में विष्णु को एक बार *तारण* और दो बार *तार* कहा गया है। दूसरे *तार* नाम पर आदि शङ्कराचार्य कहते हैं कि संसार-सागर से तारने वाले *तार* हैं, अथवा *प्रणव* (ॐ) *तार* है। *तार* रुद्र (शिव) का भी एक प्रसिद्ध नाम है—यजुर्वेद की *वाजसनेयी*, *काण्व*, *तैत्तिरीय*, और *मैत्रायणी* संहिताओं में प्राप्त *शतरुद्रिय सूक्त* में *नमः ताराय* (“तार को नमन है”) ऐसा प्रयोग प्राप्त है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, पुराण, कोशा

व्युत्पत्ति

$\sqrt{तृ} + णिच् + अच् \rightarrow तारा$

$\sqrt{तृ}$  ► तैरना, पार करना; *णिच्* ► प्रेरणार्थक प्रत्यय; *अच्* ► कर्ता, करण, या भाव के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

अथ, यह (ॐ) **तार** क्यों कहलाता है? उच्चारण करने मात्र पर गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा, मरण, और संसार के महाभयों से तारता है और रक्षा करता है इसलिए ॐ **तार** कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ओंकार **तार** कहा गया है। ... क्योंकि यह ध्यान किये जाने पर संसार के बाँधने वाले समुद्र से आकुल सभी दुःखों की उत्थित लहरों से तारता है इसलिये **तार** कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ॐ अपने जप में आसक्त मानस वाले को भवसागर से तारता है इसलिये **तार** नाम से ख्यात है।

—स्कन्द पुराण

इस प्रकार सत्य युग में सभी [देवता] गायत्री के जप में तत्पर थे और **तार** (ॐ) और **हृल्लेखा** (ज्ञानियों के हृदय में निवास करने वाली देवी) के जप में उनका मानस निष्णात था।

—देवी भागवत

अपने जापकों को संसार-सागर के जो तारता है वह **तार** है। अथवा जिसके द्वारा तारा जाता है वह **तार** है। अथवा भाव में अच् प्रत्यय हैं।

—वाचस्पत्य कोश

(९०)

## त्रैकाल्य

अर्थ

तीन काल—भूत, वर्तमान, और भविष्य

व्याख्या

ॐ का यह नाम योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में प्राप्त होता है। ॐ तीनों कालों—भूत, वर्तमान, और भविष्य का प्रतिनिधि है। मैत्री उपनिषद् (९२) में इस त्रिक को ॐ की कालवती तनु (कालमय शरीर) कहा गया है। उपनिषदें कहती हैं कि ॐ न केवल तीनों कालों का व्यापक है, परन्तु जो त्रिकालातीत (तीनों कालों से परे) है वह भी ओंकार ही है।

ॐ का यह नाम काल के सिद्धान्त को इङ्गित करता है। हिन्दू शास्त्रों में काल शब्द समय और परब्रह्म दोनों के लिये प्रयुक्त होता है। काल के दो रूप कहे गये हैं—सखण्ड और नित्य (अखण्ड)। समय के विभाग जैसे दिन-रात, मास, ऋतु, वर्ष, आदि तथा भूत, वर्तमान, और भविष्य काल के भेद हैं। यह सखण्ड काल है। अखण्ड काल शाश्वत और अक्षय है। सखण्ड और अखण्ड काल दोनों को शास्त्रों में परब्रह्म कहा गया है। पुरुष के रूप में ब्रह्म का वर्णन करने वाले पुरुष सूक्त के अनुसार जो यह सब है (अर्थात् वर्तमान), जो हुआ था (अर्थात् भूत), और जो होने वाला है (अर्थात् भविष्य)—ये सब पुरुष ही हैं। गीता में कृष्ण कहते हैं, “मैं ही अक्षय काल हूँ” यह वैसे ही है जैसे परम दैवत ॐ को तीन काल और त्रिकालातीत दोनों कहा गया है।

भारतीय दर्शन में बहुत्र काल को मूल कारण और नियामक (नियन्त्रण करने वाला) माना गया है। पाँचवीं शताब्दी के दार्शनिक कवि भर्तृहरि काल का सजीव चित्रण करते हुए कहते हैं कि काल इस लोकयन्त्र का सूत्रधार है जो प्रतिबन्ध (किसी घटना को रोकना) और अनुज्ञा (किसी घटना को होने देना) के द्वारा विश्व को विभक्त (नियन्त्रित) करता है। भर्तृहरि कहते हैं कि काल संसार रूपी फलक पर प्राणियों को गोटियाँ (सार) बनाकर खेलता है। जैसे वो किसी महानगर के अवशेष देख रहे हों, भर्तृहरि कहते हैं—“वह रम्य नगरी, वह महान् राजा, वह सामन्त चक्र, उसके पास वह विद्वानों की परिषद्, वे चन्द्रमुखी सुन्दरियाँ, वह उद्भूत (गर्वित) राजपुत्रों का समूह, वे बन्दी और उनकी वे कथाएँ—यह सब जिसके वश में आकर अब केवल स्मृति रह गया है उस काल को नमन है।”

त्रैकाल्य का एक और अर्थ है सूर्योदय का समय, मध्याह्न का समय, और सूर्यास्त का समय। यह दैनिक त्रिकाल सन्ध्या के समय हैं। त्रिकाल सन्ध्या में ॐ का अनेक बार उच्चारण होता है। जिस प्रकार ॐ सर्वपावन (“सबको पवित्र करने वाला”, पृ. ८०) कहा गया है, उसी प्रकार त्रिकाल सन्ध्या को सभी पापों का नाशक कहा गया है। त्रैकाल्य का एक और अर्थ है उत्पत्ति, स्थिति, और संहार की तीन स्थितियाँ। मैत्री उपनिषद् कहती है कि सभी प्राणी काल से उत्पन्न होते हैं,

काल से वृद्धि प्राप्त करते हैं, और काल में ही अस्त होते हैं। जैसे ॐ स्रष्टा ब्रह्मा, रक्षक विष्णु, और संहारक शिव इन तीनों देवों का प्रतिनिधि है, उसी प्रकार यह सृष्टिचक्र की तीन स्थितियों और सृष्टिचक्र का भी द्योतक है। अन्ततः, **त्रैकाल्य** का अर्थ है जीवन की तीन अवस्थाएँ—बाल्यकाल, यौवन, और वृद्धावस्था। ॐ स्वयं अवस्थातीत (अजर) और नित्य नवीन है (**प्रणव**, पृ. [३७](#)), अतः यह तीनों अवस्थाओं का वाचक है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

त्रि + काल + प्यन् → त्रैकाल्य।

त्रि ► तीन; **काल** ► समय; **प्यन्** ► स्वार्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

भूत, भव्य (वर्तमान), और भविष्य है—इस कारण से ॐ **त्रैकाल्य** कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति



(९१)

## त्रिधातु

अर्थ

१ शरीर की तीन धातुएँ—वात, पित्त, और कफ २ तीन भागों वाला ३ गणेश—तीन पुरुषार्थों के पोषक।

व्याख्या

ॐ का यह नाम भारत के प्राचीन औषधि विज्ञान आयुर्वेद से संबन्धित है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर में तीन धातुएँ हैं—वात, पित्त, और कफ। ये धातुएँ तीन गुणों (सत्त्व, रजस्, और तमस्), पाँच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु), और छः रसों (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, और कषाय) से संबद्ध हैं। आयुर्वेद के अनुसार जब ये तीन धातुएँ अपने स्वाभाविक संतुलन में विद्यमान होती हैं तब शरीर स्वस्थ रहता है। तीन धातुओं के संतुलन के बिगड़ने से ही शरीर के सारे रोग होते हैं। जब तीनों धातु असंतुलित हों तो ऐसी अवस्था को *सन्निपात* (“साझा आक्रमण”) या *त्रिलिङ्ग* (“तीन चिह्नों से युक्त”) कहते हैं। संयोगवश *त्रिलिङ्ग* भी ॐ का ही नाम है (९३)।

ॐ को *त्रिधातु* कहते हैं क्योंकि इसकी तीन ध्वनियाँ प्राण धारण करने वाली तीन धातुओं की वाचक हैं। ॐ स्वयं में तीनों धातुओं से और उनके असंतुलन से होने वाले रोगों से परे है। *त्रिधातु* श्रीकृष्ण का एक नाम है। *महाभारत* के *शान्ति पर्व* में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि आयुर्वेद को जानने वाले उन्हें (कृष्ण को) *त्रिधातु* कहते हैं क्योंकि जीवन तीन धातुओं के अधीन है—तीनों धातुओं द्वारा ही जन्तु धारण किया जाता है और तीनों धातुओं के क्षीण होने पर जन्तु का क्षय हो जाता है।

*धातु* शब्द का शाब्दिक अर्थ है “धारण करने वाला” और यह शब्द भाग या अव्यय के लिये प्रयुक्त होता है। विशेषतः यह शब्द आयुर्वेद में मान्य तीन धातुओं (वात, पित्त, और कफ) और सात धातुओं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र), पञ्च महाभूतों और उनके गुणों, पाँच ज्ञानन्द्रियों, सीसा-लोहा आदि धातुओं, और शब्दों के मूलों के लिये प्रयुक्त होता है। कृष्ण के साथ-साथ *महाभारत* के *शान्ति पर्व* में ॐ को भी *त्रिधातु* कहा गया है। यहाँ *त्रिधातु* का अर्थ तीन अवयव (अकार, उकार, और मकार) वाला बताया गया है।

*त्रिकाण्डशेष कोश* के अनुसार *त्रिधातु* शब्द गणेश का वाचक है। मनुष्यों को तीन पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, और काम का भरण-पोषण और धारण करने के कारण गणेश *त्रिधातु* हैं। ॐ को भी इन तीन पुरुषार्थों का प्रदाता कहा गया है (*त्रिप्रयोजन*, पृ. ३६)। इस प्रकार *त्रिधातु* यह नाम ॐ का गाणपत सम्प्रदाय के परम दैवत गणेश के साथ तादात्म्य ध्वनित करता है। *गणेश पुराण* के *गणेश सहस्रनाम* में दो नाम—*पञ्चाक्षरात्मा* (ओंकार के स्वरूप वाले, पृ. २६) और *एकाक्षर-*

परायण (ओंकार जिनका निवास है) — ॐ को गणेश से संबन्धित करते हैं। भास्करराय की टीका के अनुसार एकाक्षर-परायण नाम का अर्थ है कि गणेश ॐ में स्थित हैं, क्योंकि एकाक्षर ॐ का नाम है (६४)।

परम्परा

स्मृति, महाभारत, आयुर्वेद।

व्युत्पत्ति

त्रि + धातु → त्रिधातु; त्रि + √धा + तुन् → त्रिधातु।

त्रि ► तीन; धातु ► १ शारीरिक धातु (वात, पित्त, और कफ) २ भाग, अवयव। √धा ► धारण करना; तुन् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

वात, पित्त, और श्लेष्मा (कफ) — ॐ त्रिधातु कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(९२)

त्रिक

अर्थ

तिकड़ी, त्रयी, तीन का समूह।

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थ प्राणतोषिणी में ॐ को **त्रिक** कहा गया है। **त्रिक** शब्द का अर्थ है तीन का समूह, अथवा त्रयी या तिकड़ी। ॐ अनेक त्रयियों का प्रतिनिधित्व करता है, अतः **त्रिक** कहलाता है। ॐ के अनेक नाम त्रि (तीन) से प्रारम्भ होते हैं। इस पुस्तक के चौदह मनकों में ऐसे नामों को समझाया गया है। यद्यपि इनमें से अधिकांश नाम स्मृतियों में, विशेषतः योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में, प्राप्त होते हैं, ॐ और त्रिकों का संबंध उपनिषदों में भी दर्शाया गया है। मैत्री उपनिषद् कहती है कि ॐ यह शब्द ॐ का स्वरमय शरीर है। दीपिका टीका के अनुसार यहाँ तीन प्रकार के स्वरों (उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित) की ओर संकेत हैं। तत्पश्चात् उपनिषद् ग्यारह त्रिकों को ॐ के शरीरों के रूप में प्रस्तुत करती है—

- (१) स्त्री, पुरुष, और नपुंसक—लिङ्गमय शरीर (९३)।
- (२) अग्नि, वायु, और सूर्य—प्रकाशमय शरीर (४०)।
- (३) ब्रह्मा, शिव, और विष्णु—अधिपतिमय शरीर (१)।
- (४) गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, और आहवनीय—मुखमय शरीर (३)।
- (५) ऋग्वेद, यजुर्वेद, और सामवेद—विज्ञानमय शरीर (४)।
- (६) भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्लोक—लोकमय शरीर (२)।
- (७) भूत, वर्तमान, और भविष्य—कालमय शरीर (९०)।
- (८) प्राण, अग्नि, और सूर्य—प्रतापमय शरीर।
- (९) अन्न, जल, और चन्द्रमा—वृद्धिमय शरीर।
- (१०) बुद्धि, मन, और अहंकार—चेतनमय शरीर।
- (११) प्राण, अपान, और व्यान—प्राणमय शरीर (३६)।

उपनिषद् कहती हैं कि ॐ का उच्चारण करने से इन ग्यारहों त्रिकों का स्तवन, अर्चन, और अर्पण होता है। *दीपिका* टीका के अनुसार ग्यारहों त्रिकों के तीन-तीन अवयवों का ॐ की तीन ध्वनियों (अकार, उकार, और मकार) से संबन्ध है।

आयुर्वेद में *त्रिक* शब्द त्रिफला के लिये प्रयुक्त होता है। त्रिफला तीन फलों—हरीतकी (हरड़), विभीतकी (बहेड़ा), और आमलकी (आँवला)—के समान भागों को मिलाकर बनाई जाने वाली एक सशक्त आयुर्वेदीय औषधि है। आयुर्वेद के ग्रन्थों के अनुसार त्रिफला में त्रिदोष अर्थात् तीन धातुओं (वात, पित्त, और कफ) के असंतुलन से उत्पन्न रोग को नष्ट करने की शक्ति है। *त्रिधातु* (३१) के रूप में ॐ तीन धातुओं के संतुलन का प्रतिनिधि है, और यह संतुलन त्रिफला द्वारा पुनः स्थापित किया जाता है।

*भागवत पुराण* में *त्रिक* शब्द का प्रयोग प्रपत्ति (शरणागति) के तीन फलों के लिये हुआ है। पुराण में वर्णन आता है—“जिस प्रकार भोजन करने वाले को प्रत्येक घ्रास से तुष्टि, पुष्टि, और क्षुधा की निवृत्ति एक-साथ होती है, उसी प्रकार शरण में आनेवाले को भक्ति (प्रेम), ईश्वर का साक्षात्कार, और वैराग्य यह *त्रिक* एक साथ प्राप्त होता है।” *पद्म पुराण* के अनुसार ॐ प्रपत्ति का भी संकेतक है—पुराण में ॐ की तीन ध्वनियों का अर्थ विष्णु, लक्ष्मी, और उनका दास कहा गया है (७)।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

त्रि + कन् → त्रिका

त्रि ► तीन; कन् ► समूह के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

ॐ *त्रिक* कहलाता है।

—प्राणतोषिणी

## त्रिलिङ्ग

अर्थ

१ तीन लिङ्ग—स्त्री, पुरुष, और नपुंसक २ तीन गुण ३ तीन प्रकार के अहंकार

व्याख्या

ॐ का यह नाम स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त होता है। *मैत्री उपनिषद्* में इस नाम की ओर संकेत है। उपनिषद् कहती है कि स्त्री, पुरुष, और नपुंसक ॐ का लिङ्गमय शरीर हैं (९२)।

संस्कृत भाषा में तीन लिङ्ग हैं—स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग, और नपुंसकलिङ्ग। अधिकांश नामों (संज्ञाओं) का एक ही लिङ्ग होता है। इन तीन लिङ्गों में सभी नाम आ जाते हैं, जिस प्रकार ॐ के द्वारा ब्रह्माण्ड व्याप्त माना जाता है। विशेषणों का संस्कृत में एक लिङ्ग नहीं होता; यथा सुन्दर यह विशेषण सुन्दरः पुरुषः (सुन्दर पुरुष) में पुल्लिङ्ग है, सुन्दरी नारी (सुन्दर महिला) में स्त्रीलिङ्ग है, और सुन्दरं चित्रम् (सुन्दर चित्र) में नपुंसकलिङ्ग है। ऐसे विशेषणों को त्रिलिङ्ग कहते हैं, क्योंकि वे तीनों लिङ्गों में पाए जाते हैं। जिस प्रकार त्रिलिङ्ग शब्द व्याकरण में लिङ्ग से अतीत है, उसी प्रकार ॐ प्रकृति में लिङ्ग से अतीत है। *भागवत पुराण* के गजेन्द्रमोक्ष प्रकरण (९७) में विष्णु का ऐसा वर्णन प्राप्त है—“वह न स्त्री है, न षण्ड (नपुंसक) है, न पुरुष है, और न ही जन्तु (तीनों लिङ्गों से रहित) है।” इसी सिद्धान्त के फलस्वरूप हिन्दू धर्म में किसी भी लिङ्ग में परब्रह्म की उपासना की स्वतन्त्रता है—परब्रह्म को श्री, ललिता, या दुर्गा (स्त्री) के रूप में; विष्णु, शिव, राम, या कृष्ण (पुरुष) के रूप में, ब्रह्म या ॐ (नपुंसक) के रूप में; या अर्धनारीश्वर (स्त्री-पुरुष) के रूप में पूजा जा सकता है।

*भागवत पुराण* में शिव को तीन गुणों से संवृत होने के कारण और तीन प्रकार के अहंकार स्वरूप होने के कारण त्रिलिङ्ग कहा गया है। तीन प्रकार के अहंकार हैं वैकारिक (जिससे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, और मन उत्पन्न हुए हैं), तैजस (जो शेष दो अहंकारों का सहायक है), और भूतादि (जिससे पाँच तन्मात्रा उत्पन्न हुई हैं)। ये दोनों अर्थ सांख्य दर्शन पर आधारित हैं और त्रिगुण (११) नाम से जाने जानेवाले ॐ के लिये प्रासंगिक हैं।

लिङ्ग शब्द √लिङ् धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है “जाना” या “रंगना” या “चिह्नित करना”। लिङ्ग का अर्थ है कोई निश्चित चिह्न। व्याकरण के तीन लिङ्गों, तीन गुणों, और अहंकार के तीन प्रकारों को क्रमशः शब्दों, क्रियाओं, और सृष्टि के प्रकारों को चिह्नित करने के कारण लिङ्ग कहते हैं।

शिवलिङ्ग शब्द में भी लिङ्ग का अर्थ चिह्न ही है। शिवलिङ्ग शिव का निराकार (मानवीय आकार से रहित) रूप है, जो उनके साकार (त्रिनेत्र सर्पधारी मानवीय रूप) रूप से भिन्न है। पुरुष

की जननेन्द्रिय को भी *लिङ्ग* कहते हैं पर *शिवलिङ्ग* शब्द में यह अर्थ नहीं है। प्राचीन संस्कृत कोशों में *लिङ्ग* का अर्थ है शिव की विशेष मूर्ति। आधुनिक पाश्चात्य कोशों में जो *लिङ्ग* शब्द का *शिवलिङ्ग* के सन्दर्भ में जननेन्द्रिय अर्थ बताया गया है वह प्राचीन कोशों के प्रामाणिक अर्थ से सम्मत नहीं है।

तेलंगाना और आन्ध्र प्रदेश क्षेत्र का प्राचीन नाम *त्रिलिङ्ग* (“तीन [प्रसिद्ध] शिवलिङ्गों का स्थान”) है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, व्याकरण।

व्युत्पत्ति

त्रि + लिङ्ग → त्रिलिङ्ग।

*त्रि* ► तीन; *लिङ्ग* ► १ व्याकरण का लिङ्ग (स्त्री, पुरुष, नपुंसक); २ गुण (सत्त्व, रजस्, तमस्); ३ अहंकार (वैकारिक, तैजस, भूतादि)।

उद्धरण

*ओंकार त्रिलिङ्ग* कहा गया है—वह स्त्री, पुरुष, और नपुंसक है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(९४)

## त्रिप्रज्ञ

अर्थ

स्वप्न, विश्व, और सुषुप्ति—इन तीनों का ज्ञाता

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में प्राप्त ॐ का यह नाम १२ श्लोकों वाली लघुतम उपनिषद् माण्डूक्य उपनिषद् में उक्त तीन प्रकार के ज्ञान की ओर संकेत करता है। उपनिषद् कहती है कि एक ही आत्मा के तीन प्रज्ञान होते हैं—जाग्रत् अवस्था में आत्मा बहिःप्रज्ञ अर्थात् बाह्य जगत् का ज्ञाता होता है। इस अवस्था में आत्मा वैश्वानर (“सभी जीवों का”) कहलाता है और यह ॐ की प्रथम ध्वनि अकार से अभिन्न है। राम तापिनी (२१) और गोपाल तापिनी (६) उपनिषदों में क्रमशः लक्ष्मण (राम के निकटतम भ्राता) और बलराम (कृष्ण के भ्राता) को वैश्वानर कहा गया है। माण्डूक्य उपनिषद् में वैश्वानर के सात अङ्ग और उन्नीस मुख कहे गये हैं। सात अङ्ग से तात्पर्य है सिर, नेत्र, प्राण, उदर, जननेन्द्रिय, पाद, और मुख का। उन्नीस मुखों से तात्पर्य है पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, और अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार) का।

स्वप्नावस्था में आत्मा अन्तःप्रज्ञ अर्थात् आन्तरिक जगत् का ज्ञाता होता है। इस अवस्था में आत्मा तैजस (“द्युतिमान्”) कहलाता है और यह ॐ की द्वितीय ध्वनि उकार से अभिन्न है। राम तापिनी और गोपाल तापिनी उपनिषदों में तैजस को क्रमशः शत्रुघ्न (राम के कनिष्ठ भ्राता) और प्रद्युम्न (कृष्ण के पुत्र) कहा गया है। माण्डूक्य उपनिषद् में तैजस के भी सात अङ्ग और उन्नीस मुख कहे गए हैं।

सुषुप्ति की तृतीय अवस्था में आत्मा प्रज्ञानघन या घनप्रज्ञ (घने ज्ञान वाला) होता है। इस अवस्था में आत्मा प्राज्ञ (“भली-भाँति जाननेवाला”) कहलाता है और यह ॐ की तृतीय ध्वनि मकार से अभिन्न है। राम तापिनी और गोपाल तापिनी उपनिषदों में प्राज्ञ को क्रमशः भरत (राम के भक्त भ्राता) और अनिरुद्ध (कृष्ण के पौत्र) कहा गया है। माण्डूक्य उपनिषद् में प्राज्ञ का एक ही मुख—चित्त—बताया गया है।

तीनों अवस्थाएँ ॐ की तीन ध्वनियाँ हैं। स्वयं ॐ इन तीन अवस्थाओं से परे आत्मा है। माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार तुरीय (चतुर्थ) अवस्था में आत्मा न तो अन्तःप्रज्ञ (आन्तरिक ज्ञाता) है, न बहिःप्रज्ञ (बाह्य जगत् का ज्ञाता) है, न उभयतःप्रज्ञ (अन्तर और बाह्य दोनों का ज्ञाता) है, न प्रज्ञानघन (घने ज्ञान वाला) है, न प्रज्ञ (विशेष ज्ञान वाला) है, और न ही अप्रज्ञ (ज्ञानशून्य) है। ॐ अथवा इस अवस्था में आत्मा तीनों ध्वनियों से परे अर्धमात्रा में अधिष्ठित है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

त्रि + प्रज्ञा → त्रिप्रज्ञा

त्रि ► तीन; प्रज्ञा ► ज्ञान, बुद्धि।

उद्धरण

ओंकार *त्रिप्रज्ञा* है—यह अन्तःप्रज्ञ, बहिष्प्रज्ञ, और घनप्रज्ञ कहा गया है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति



## त्रिप्रतिष्ठित

अर्थ

तीन स्थानों—आत्मा, प्राण, और सूर्य—में प्रतिष्ठिता

व्याख्या

प्रतिष्ठित शब्द का अर्थ है प्रतिष्ठा-प्राप्त या गौरवान्विता। कई हिन्दू ग्रन्थों में इस विषय पर चर्चा प्राप्त होती है कि सब कुछ कहाँ प्रतिष्ठित है। तैत्तिरीय आरण्यक के एक अनुवाक में मोक्ष के ग्यारह साधनों की चर्चा है। इनमें से आठ—सत्य, तप, शम, दम, दान, धर्म, यज्ञ, और मानस—की “इसमें सब प्रतिष्ठित हैं” कहकर प्रशंसा की गयी है। अनुवाक के अन्त में समाधि के प्रकृष्ट साधन के रूप में ॐ की प्रशंसा है। तात्पर्य यह है कि मोक्ष के प्रकृष्ट साधन ॐ में सब प्रतिष्ठित हैं। परन्तु ॐ स्वयं कहाँ प्रतिष्ठित है? योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार ॐ तुर्य (मुक्त आत्मा), प्राण (क्रिया शक्ति), और आदित्य (सूर्य) में प्रतिष्ठित है, और इसलिए ॐ त्रिप्रतिष्ठित कहलाता है।

मुक्त आत्मा को चतुर्थ अवस्था (तुर्य) कहा गया है। शेष तीन अवस्थाएँ हैं जाग्रत्, स्वप्न, और सुषुप्ति। ॐ को न केवल मोक्ष का साधन अपितु मोक्ष की अवस्था (तार, पृ. ८९) भी माना गया है। इस प्रकार ॐ तुर्य में प्रतिष्ठित है। प्रश्न उपनिषद् कहती है कि मुक्त आत्मा परम अक्षर (ओंकार) स्वरूप में संप्रतिष्ठित होता है। इस प्रकार मुक्त आत्मा और ॐ दोनों एक-दूसरे में प्रतिष्ठित हैं। माण्डूक्य उपनिषद् में भी ॐ और आत्मा की चतुर्थ अवस्था का साम्य बताया गया है।

ॐ को प्राण में भी प्रतिष्ठित कहा गया है। उपनिषद्, पुराण, और योगशास्त्र में ॐ को प्राणायाम बताया गया है जिसमें अकार पूरक है, उकार कुम्भक है, और मकार रेचक है (२४)। इन ग्रन्थों में कहा गया है कि प्राणायाम प्रणवमय है। संयोगवश प्राण की अनेक प्रश्नों में प्रशंसा करने वाली प्रश्न उपनिषद् में कहा गया है कि रथ के चक्र की नाभि में अरों की भाँति सब कुछ प्राण में प्रतिष्ठित है।

उपनिषद् और स्मृति ग्रन्थों में ॐ को सूर्य में प्रतिष्ठित कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार सूर्य के अन्तर्गत ऋग्वेद और सामवेद द्वारा प्रशस्त हिरण्यमय पुरुष ही ॐ है। यही कारण है कि योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में सूर्यान्तर्गत (“सूर्य के अन्दर स्थित”, पृ. ४४) भी ॐ का एक नाम है।

अथर्ववेद के एक रहस्यमय मन्त्र में आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली नगरी (मानव शरीर) के भीतर स्थित ज्योति से आवृत स्वर्णमय कोश को त्रिप्रतिष्ठित कहा गया है। एक टीका के अनुसार यहाँ त्रिप्रतिष्ठित शब्द का अर्थ है कर्म, उपासना, और ज्ञान में प्रतिष्ठिता।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, योग।

व्युत्पत्ति

त्रि + प्रतिष्ठित → त्रिप्रतिष्ठित।

त्रि ▶ तीन; *प्रतिष्ठित* ▶ प्रतिष्ठा-प्राप्त, गौरवयुक्त।

उद्धरण

ॐ *त्रिप्रतिष्ठित* हैं—यह तुर्य (मुक्त आत्मा), प्राण, और सूर्य—तीनों में प्रतिष्ठित हैं।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(९६)

## त्रिप्रयोजन

अर्थ

धर्म, अर्थ, और काम—तीन प्रयोजन वाला

व्याख्या

प्रयोजन का अर्थ है प्रारम्भ या अस्तित्व का कारण। *त्रिप्रयोजन* का अर्थ है तीन प्रयोजनों वाला। संस्कृत में एक सूक्ति है—*प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते*, अर्थात् बिना प्रयोजन जाने तो कोई मन्दबुद्धि भी (किसी कार्य में) प्रवृत्त नहीं होता। कुमारिल भट्ट के अनुसार जब तक किसी शास्त्र या कर्म का प्रयोजन उक्त नहीं होता तब तक वह किसी के भी द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता। फिर वैदिक शास्त्रों (*त्रिब्रह्म*, पृ. ४) के प्रतिनिधि ॐ का क्या प्रयोजन है?

इस प्रश्न का उत्तर *योगी याज्ञवल्क्य स्मृति* में प्राप्त होता है। स्मृति कहती है कि ॐ *त्रिप्रयोजन* है क्योंकि इसके तीन प्रयोजन हैं—धर्म, अर्थ, और काम। इन तीनों को *त्रिवर्ग* नाम से भी जाना जाता है। *गरुड पुराण* में त्रिवर्ग की महिमा यह कहकर बताई गयी है कि जिसके दिन त्रिवर्ग से शून्य (रहित) होकर आते-जाते हैं वह श्वास लेते हुए भी जीवित नहीं है।

धर्म, अर्थ, और काम की भिन्न-भिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं। *नीतिवाक्यामृत* में इनका संक्षिप्त सार दिया गया है। ग्रन्थ के अनुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त हो वह धर्म है, जिससे सभी प्रयोजनों की सिद्धि हो वह अर्थ है, और जिससे सभी इन्द्रियों में देहाभिमान के रस से अनुविद्ध प्रीति हो वह काम है।

प्रायः त्रिवर्ग में धर्म को अर्थ से बड़ा प्रयोजन माना गया है, और अर्थ को काम से बड़ा। इस मत का वात्स्यायन कृत *कामसूत्र* में भी समर्थन किया गया है। *कामसूत्र* का प्रारम्भ ही “धर्म, अर्थ, और काम को नमस्कार है” इस वाक्य से होता है। *अर्थशास्त्र* में चाणक्य ने कहा है कि धर्म और काम का आधार होने के कारण अर्थ ही प्रधान है। *मनुस्मृति* में मनु ने संक्षेप में सबके मत का सार देकर कहा है, “स्थिति (सत्य) तो यह है कि त्रिवर्ग ही श्रेयस्कर है।” मनु का तात्पर्य है कि परस्पर अविरोधी धर्म, अर्थ, और काम तीनों का संतुलित योग श्रेयस्कर है। मनु आगे कहते हैं, “धर्म से रहित अर्थ और काम का परित्याग कर देना चाहिये, और भविष्य में दुःख देने वाले अथवा लोक द्वारा संकुष्ट (अस्वीकार्य) धर्म का भी परित्याग कर देना चाहिए।” मेधातिथि के *मनुभाष्य* में ऐसे धर्म के उदाहरण दिये गए हैं। सर्वस्वदान (सब कुछ दे देना) एक ऐसा धर्म का कार्य है जो भविष्य में दुःख देता है। नियोग (विधवा स्त्री का मृत पति के भ्राता से संतान प्राप्त करना) एक ऐसा धर्मकृत्य है जो लोक द्वारा अस्वीकार्य है।

मोक्ष के सहित धर्म, अर्थ, और काम मनुष्यों के चार पुरुषार्थ कहे जाते हैं। ॐ की तीन घटक

ध्वनियाँ त्रिवर्ग की प्रतिनिधि हैं, और ॐ स्वयं इस त्रिवर्ग से परे मोक्ष स्वरूप (*तार*, पृ. [८९](#)) हैं।

परम्परा

स्मृति।

व्युत्पत्ति

त्रि + प्रयोजन → त्रिप्रयोजना।

त्रि ▶ तीन; प्रयोजन ▶ उद्देश्य, हेतु।

उद्धरण

ॐ *त्रिप्रयोजना* हैं। काम के सहित ये धर्म और अर्थ ये तीन इसके प्रयोजन कहे गये हैं।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(९७)

## निरवस्थ

अर्थ

शान्त, घोर, और मूढ़—तीन अवस्थाओं वाला

व्याख्या

ॐ का यह नाम सांख्य दर्शन में वर्णित महाभूतों की तीन अवस्थाओं की ओर संकेत करता है। सांख्य में पञ्च महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु) की तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं—शान्त, घोर, और मूढ़। टीकाओं के अनुसार शान्त का अर्थ है सुखद, घोर का अर्थ है दुःखद, और मूढ़ का अर्थ है मोहक। एक ही महाभूत की भिन्न व्यक्तियों के लिये भिन्न समय पर भिन्न अवस्था हो सकती है। गर्भगृह या छोटे घर से बाहर आए व्यक्ति के लिये आकाश (अवकाश) सुखद है; उष्णता (गर्मी), शैत्य (ठंडक), वायु, और वर्षा के संयोग से उद्दिग्ध व्यक्ति के लिये दुःखद है; और मार्ग भूले हुए व्यक्ति के लिये मोहक है। वायु गर्भगृह में स्थित व्यक्ति के लिये वातायन से प्रवेश करने पर सुखद है, उष्ण मासों में लू के रूप में बहने पर दुःखद है, और धूल उड़ाने पर मोहक है। अग्नि शीतकाल में ठंड से आर्त व्यक्ति के लिये सुखद है, ग्रीष्मकाल में गर्मी से आर्त व्यक्ति के लिये दुःखद है, और ग्राम या नगर के दाह के समय प्रवृद्ध होने पर मोहक है। जल ग्रीष्मकाल में गर्मी से आर्त व्यक्ति के लिये सुखद है, शीतकाल में ठंड से आर्त व्यक्ति के लिये दुःखद है, और समुद्र में तीर को न देखते हुए डूबते हुए नाविक के लिये मूढ़ है। पृथ्वी वर्षाकाल में शस्य-श्यामला होने पर सुखद है, ग्रीष्मकाल में तपने पर दुःखद है, और मार्ग भूले हुये यात्री के लिये मोहक है।

योग दर्शन में शान्त, घोर, और मूढ़, तीन प्रत्यय (विश्वास) हैं जो क्रमशः सत्त्व, रजस्, और तमस् के अनुग्रह से होते हैं। जैसा कि **त्रिगुण** (११) के अन्तर्गत कहा गया है, ये तीनों गुण (सत्त्व, रजस्, और तमस्) सबको प्रभावित करते हैं और कोई भी एक दूसरे दोनों पर भारी पड़ता है, जिससे मन के उपर्युक्त तीन प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। शान्त मन सुखद है, घोर मन दुःखद है, और मूढ़ मन मोहक है।

ॐ की तीन ध्वनियाँ पञ्च महाभूतों और मानस प्रत्यय की तीन अवस्थाओं की प्रतिनिधि हैं। जैसा तीन गुणों (सत्त्व, रजस्, और तमस्) के विषय में कहा गया है, ॐ स्वयं अवस्थातीत है; अर्थात् सुखकारी, दुःखकारी, और मोहकारी अवस्थाओं से परे है। कई ग्रन्थों में ॐ और परब्रह्म को *अवस्थातीत* या *निरवस्थ* कहा गया है।

**भागवत पुराण** के अष्टम स्कन्ध में वैष्णव परम्पराओं में प्रसिद्ध और अनेक मन्दिरों, मूर्तियों, तथा चित्रों में चिरकाल के लिये अङ्कित **गजेन्द्रमोक्ष** का प्रकरण प्राप्त होता है। एक ब्राह्म (मगरमच्छ) सरोवर में एक गजेन्द्र (हाथियों के राजा) का एक पैर पकड़ लेता है। अपनी सारी शक्ति लगाकर

हारने के पश्चात् गजेन्द्र विष्णु की स्तुति करता है और विष्णु गजेन्द्र की रक्षा करते हैं। अपनी स्तुति में गजेन्द्र विष्णु को शान्त, घोर, और मूढ, के साथ-साथ **आदिबीज** (ॐ, पृ. ४९) कहकर संबोधित करता है।

परम्परा

स्मृति।

व्युत्पत्ति

त्रि + अवस्था → त्रिवस्था

त्रि ► तीन; **अवस्था** ► अवस्था, दशा।

उद्धरण

शान्त, घोर, और मूढ, होने से ॐ **त्रिवस्थ** कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

शान्त, घोर, और मूढ (विष्णु) को नमन हो।

—भागवत पुराण

## त्रिस्थान, त्र्यवस्थान

अर्थ

तीन स्थानों वाला—हृदय, कण्ठ, और तालु

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में प्राप्त ये नाम वैदिक शिक्षा की परम्परा में मान्यता प्राप्त उच्चारण के तीन प्रमुख स्थानों की ओर संकेत करते हैं। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार उच्चारण क्रम इस प्रकार है। आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को संगत करके मन को विवक्षा से युक्त करता है। मन शरीराग्नि को आहत करता है और शरीराग्नि वायु को प्रेरित करती है। वायु उरःस्थल (फेफड़ों) में चरते हुए मन्द्र स्वर को, कण्ठ में चरते हुए मध्यम स्वर को, और तालु में चरते हुए तार स्वर को जन्म देता है—इस प्रकार भिन्न प्रकार के वर्ण जन्म लेते हैं।

ॐ के ये नाम ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में पाँच देवताओं—अग्नि, सूर्य, जल, गो, और घृत—को अभिमन्त्रित एक सूक्त से भी सम्बद्ध हैं। इस सूक्त में एक रहस्यमय मन्त्र इस प्रकार है—“चार सींग, तीन पैर, दो सिर, और सात हाथों वाला तीन प्रकार से बँधा हुआ बैल उच्च स्वर में राव (स्वर) करता है; महान् देव मर्त्य जीवों में प्रवेश कर चुका है।” व्याकरण सम्प्रदाय में इस मन्त्र को शब्दब्रह्म (शब्द रूपी परमब्रह्म) का वर्णन माना गया है। महान् देव या बैल शब्दब्रह्म है; चार पदजात अर्थात् नाम (संज्ञा), आख्यात (क्रिया), उपसर्ग, और निपात ही इसके चार सींग हैं; तीन काल अर्थात् भूत, भविष्य, और वर्तमान इसके तीन पैर हैं; दो प्रकार के शब्द अर्थात् नित्य (सिद्धान्त रूपी शब्द) और कार्य (ध्वन्यात्मक शब्द) इसके दो सिर हैं; सात विभक्तियाँ (प्रथमा से सप्तमी) इसके सात हाथ हैं; और तीन स्थानों अर्थात् उरःस्थल, कण्ठ, और तालु (उच्चारण के तीन स्थान) पर बँधना ही इसका तीन प्रकार से बँधना है। मैत्री उपनिषद् सहित अनेक स्रोतों में ॐ को शब्दब्रह्म कहा गया है। इस प्रकार ॐ का और ॐ के सार वाली समस्त वाणी का उच्चारण के तीन स्थानों में निवास है। त्रिस्थान और त्र्यवस्थान नामों का यही तात्पर्य है। विचार्य है कि ऋग्वेद के मन्त्र में तीन प्रकार से (तीन स्थानों पर) बँधने का वर्णन है; और अवस्थान शब्द का विशेष अर्थ है किसी वस्तु को बँधने या चिर स्थापित करने का स्थान।

व्याकरण से इतर कई अन्य परम्पराओं में शब्द के रूप में ब्रह्म या शब्दब्रह्म का सिद्धान्त प्रतिपादित है। उपनिषदों, पुराणों, और महाभारत में कुछ पाठभेदों सहित प्राप्त एक श्लोक के अनुसार शब्दब्रह्म और परब्रह्म ये दो ब्रह्म जानने योग्य हैं, और जो शब्दब्रह्म में निष्णात है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

परम्परा

स्मृति, व्याकरण।

व्युत्पत्ति

त्रि + स्थान → त्रिस्थान; त्रि + अवस्थान → त्र्यवस्थान।

त्रि ► तीन; स्थान ► (उच्चारण का) स्थान। अवस्थान ► निवास, स्थान, बाँधने का स्थान।

उद्घरण

हृदय, कण्ठ और तालुका (तालु) के कारण ॐ त्र्यवस्थान है ... ॐ त्रिस्थान कहा गया है—  
हृदय, कण्ठ, और तालुका (तालु) ये स्थान कहना (जानना) चाहिये।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति



(९९)

## त्रिवृत्

अर्थ

१ तीन अवयवों या भागों वाला, त्रय २ तीन [ध्वनियों] का वरण करने वाला

व्याख्या

मनुस्मृति और भागवत पुराण में ॐ को **त्रिवृत्** कहा गया है। **त्रिवृत्** शब्द दो धातुओं से सिद्ध किया जा सकता है। प्रथम धातु है √वृत् (“होना”)। इस धातु से निष्पन्न करने पर **त्रिवृत्** का अर्थ है वह जिसमें तीन का वर्तन (अस्तित्व) है—अर्थात् त्रय या तीन अवयवों वाला। इस अर्थ में **त्रिवृत्** शब्द का अनेक बार वेदों में प्रयोग है। उदाहरणार्थ अश्विनो के त्रय रथ को ऋग्वेद में **त्रिवृत् रथ** कहा गया है। **त्रिवृत् स्तोम** तीन वैदिक तृचों (तीन ऋचाओं के समाहारों) के पाठ की एक विधि है। ॐ **त्रिवृत्** कहलाता है क्योंकि इसके तीन भाग हैं—अकार, उकार, और मकार (१००)। अथवा, जैसा मनुस्मृति कहती है, ॐ आद्य त्र्यक्षर वेदत्रयी है, अतः **त्रिवृत्** है। यद्वा अनेक त्रिकों—तीन देवों, तीन लोकों, तीन अग्नियों, तीन प्रकार के तपो, विष्णु के तीन क्रमों, तीन गुणों, तीन मात्राओं, तीन स्थानों, तीन कालों, तीन प्रतिष्ठानों, तीन प्रज्ञानों, तीन अवस्थाओं, तीन लिङ्गों, तीन धातुओं, तीन प्रयोजनों, आदि—का प्रतिनिधित्व करने से ॐ **त्रिवृत्** है। ॐ को **त्रिक** (९२) भी कहा जाता है, जिसका अर्थ तिकड़ी या त्रयी है।

√वृ (“वरण करना, चुनना”) धातु से भी **त्रिवृत्** शब्द निष्पन्न होता है। अतः “जो तीन का वरण करता है” यह भी **त्रिवृत्** का अर्थ है। भागवत पुराण में कृष्ण कहते हैं कि वे सब मन्त्रों में **त्रिवृत्** ॐ है। एक टीका के अनुसार ॐ **त्रिवृत्** है क्योंकि यह अकार, उकार, और मकार इन तीन अक्षरों का वरण करता है।

परम्परा

स्मृति, पुराण, टीकाएँ।

व्युत्पत्ति

त्रि + √वृत् + विवप् → त्रिवृत्; अथवा त्रि + √वृ + विवप् → त्रिवृत्।

त्रि ► तीन; √वृत् ► रहना, होना; विवप् ► भाव या कर्ता के अर्थ में प्रत्यय। √वृ ► वरण करना, चुनना।

उद्धरण

जो आद्य त्र्यक्षर ब्रह्म (ॐ) है, जिसमें वेदत्रयी प्रतिष्ठित है, वह अन्य त्रिवृत् वेद है। जो इसे जानता है वह वेदवित् (वेद को जाननेवाला) है।

—मनुस्मृति

मन्त्रों में मैं त्रिवृत् प्रणव हूँ।

—उद्धव के प्रति कृष्ण, भागवत पुराण

मन द्वारा शुद्ध पर ब्रह्माक्षर त्रिवृत् (ॐ) का अभ्यास करना चाहिये।

—भागवत पुराण

(१००)

## त्र्यक्षर

अर्थ

१ तीन वर्णों (ध्वनियों) वाला २ तीन वर्णों (स्वरों) वाला ३ तीनों कालों (भूत, वर्तमान, भविष्य) में नाशरहित

व्याख्या

**अक्षर** (४७) शब्द के अनेक अर्थ हैं जिनमें वर्ण, एक स्वर वाला वर्णसमुदाय, और लिखित वर्ण सम्मिलित हैं। एक वर्ण, यथा स्वर या व्यञ्जन, वाणी की इकाई है। एक स्वर वाला (और शून्य, एक, या अधिक व्यञ्जन वाला) वर्णसमुदाय उच्चारण की इकाई है। लिखित अक्षर लेखन की इकाई है।

उपनिषदों और स्मृतियों में ॐ को **त्र्यक्षर** कहा गया है। **त्र्यक्षर** नाम त्रि (तीन) और **अक्षर** (ध्वनि) की सन्धि से उत्पन्न हुआ है। यद्यपि **एकाक्षर** ॐ एक ही वर्णसमुदाय है, तथापि तीन अक्षरों (अ, उ, और म्) की सन्धि से निष्पन्न होने के कारण यह **त्र्यक्षर** कहलाता है। ॐ की तीन ध्वनियों के नाम **लक्ष्मी तन्त्र** में दिये गये हैं। अकार का नाम **ध्रुव** (“स्थिर बिन्दु”) है। उकार का नाम **कर्ण** (“चप्पू”) है, और मकार का नाम **नाभि** (“केन्द्र बिन्दु”) है। इन नामों का संकेत है कि ॐ जीव की आध्यात्मिक यात्रा का प्रतीक है—अकार नाव को स्थिर करता है, उकार उसे अग्रसर करता है, और अन्तिम लक्ष्य मकार है जो ब्रह्माण्ड का केन्द्रीय सार है। ॐ का एक नाम **तार** (८९) है जो मोक्ष के इस सिद्धान्त को प्रतिध्वनित करता है।

**अक्षर** का अर्थ एक स्वर वाला और शून्य, एक या अधिक व्यञ्जनों से युक्त (**एकाच्**) वर्णसमुदाय भी है। ऐसा अर्थ लेने पर **त्र्यक्षर** का “तीन अक्षरों (स्वरों) वाला” अर्थ निकलता है। **ऐं वलीं सौः** आदि हिन्दू मन्त्र और **ॐ आः हुं** आदि बौद्ध मन्त्र **त्र्यक्षर मन्त्र** कहलाते हैं क्योंकि इनमें तीन स्वर हैं। एक सन्ध्या मन्त्र में गायत्री को **त्र्यक्षरा** कहते हैं, क्योंकि वे ओंकार स्वरूप हैं। अथवा तीन अक्षरों (गा-य-त्री) वाले नाम के कारण गायत्री **त्र्यक्षरा** हैं। ॐ **त्र्यक्षर** है क्योंकि इसके दो प्रसिद्ध नाम **ओंकार** (ओं-का-र) और **प्रणव** (प्र-ण-व) तीन-तीन अक्षरों वाले हैं। आत्मसन्दर्भ ॐ के इस नाम की विशेषता है। जिस प्रकार अंग्रेज़ी का *pentasyllabic* (“पाँच अक्षरों वाला”) शब्द स्वयं पाँच अक्षरों वाला है (*pen-ta-syl-la-bic*), उसी प्रकार संस्कृत का **त्र्यक्षर** शब्द स्वयं तीन अक्षरों वाला (**त्र्य-क्ष-र**) है। इस प्रकार यह नाम आत्मसन्दर्भी है।

**लिङ्ग पुराण** में शिव को **त्र्यक्षर** कहा गया है। एक टीका में इस नाम की व्याख्या है—जो तीन [कालों]—भूत, वर्तमान, और भविष्य—में नाशरहित (अक्षर) है वही **त्र्यक्षर** है। यह अर्थ ॐ के लिये भी संगत है क्योंकि वह **अनादि** (“प्रारम्भ रहित”, पृ. ७२), **अनन्त** (“अन्त रहित”, पृ. ७३) और **त्रैकाल्य** (“कालातीत”, पृ. ७०) है।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति।

व्युत्पत्ति

त्रि + अक्षर → त्र्यक्षर

त्रि ► तीन; अक्षर ► १ ध्वनि २ एक स्वर वाला (एकाच्) वर्णसमुदाय ३ नाशरहिता

उद्धरण

प्रणव नामक उद्गीथ (ॐ) त्र्यक्षर है।

—मैत्री उपनिषद्

ओंकार त्र्यक्षर कहा गया है। अकार, उकार, और मकार—यह अक्षर त्रय है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

आद्य ब्रह्म जो त्र्यक्षर (ॐ) है और जिसमें वेदत्रयी प्रतिष्ठित है, वह अन्य गुह्य त्रिवृत् वेद है। जो उसे जानता है वही वेदवित् (वेद को जानने वाला) है।

—मनुस्मृति

(१०१)

## वैद्युत

अर्थ

१ द्योतक, प्रकाशित करनेवाला २ द्युतिमान्, कान्तियुक्त ३ अग्नि ४ सूर्य।

व्याख्या

ॐ का एक नाम **वैद्युत** है, जिसका अर्थ है प्रकाशक। *अथर्वशिर उपनिषद्* और उसकी *दीपिका* टीका के अनुसार इसका कारण यह है कि ॐ अज्ञान के महान् अन्धकार में ब्रह्म के प्रकाश को द्योतित करता है।

विशेषण के रूप में **वैद्युत** शब्द का अर्थ है द्युतिमान् या कान्तियुक्त। इस अर्थ में **वैद्युत** शब्द का कई बार *तैत्तिरीय आरण्यक* में प्रयोग है। *योगी याज्ञवल्क्य स्मृति* कहती है कि ॐ **वैद्युत** है क्योंकि वह यति की भौंहों के बीच में तमस् (अन्धकार) का नाश करके ज्योति के रूप में दिखता (विद्योतित होता) है। यहाँ आज्ञा चक्र की ओर संकेत है। योग परम्परा के अनुसार आज्ञा चक्र भौंहों के बीच स्थित है और उसका बीजमन्त्र ॐ है। हठ योग के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ *घेरण्ड संहिता* में *ज्योतिर्ध्यान* (प्रकाश का ध्यान) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रणवात्मक प्रकाश भौंहों के मध्य में स्थित है। अथवा, तीन द्युतिमान् देवों का प्रतिनिधि होने के कारण ॐ द्युतिमान् है (*त्रिदैवत*, पृ. १)।

**वैद्युत** शब्द सीधे वि + √द्युत् धातु से निष्पन्न किया जा सकता है, अथवा इसी धातु से उत्पन्न *विद्युत्* शब्द (बिजली) से **वैद्युत** शब्द होता है। इस प्रकार **वैद्युत** शब्द का एक अर्थ “विद्युत् से उत्पन्न” भी है। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में अग्नि को **वैद्युत** कहा गया है। ऋग्वेद के अनुसार सर्वप्रथम अग्नि आकाश में विद्युत् के रूप में प्रादुर्भूत हुए। अतः ॐ के **वैद्युत** नाम का अर्थ अग्नि भी है। ॐ को अग्नि माना ही गया है (३)।

विश्व का प्रकाशक और अत्यन्त द्युतिमान् होने के कारण सूर्य को भी **वैद्युत** कहा जाता है। *महाभारत* में धौम्य युधिष्ठिर को १२ श्लोकों (१२ की संख्या सूर्य से सम्बन्ध बाहर आदित्यों की द्योतक है) में सूर्य के १०८ नाम बताते हैं। **वैद्युत** इन १०८ नामों में से एक है। युधिष्ठिर सूर्य को संतुष्ट करने के लिये १०८ नामों का पाठ करते हैं और प्रसन्न होकर सूर्य उन्हें *अक्षय पात्र* (भोजन का अनन्त स्रोत) प्रदान करते हैं। ॐ को अनेक स्थानों पर सूर्य बताया ही गया है (देखें *आदित्य*, पृ. ५०)।

परम्परा

उपनिषद्, स्मृति, योग।

### व्युत्पत्ति

वि + √द्युत् + णिच् + विवप् + अण्<sup>१</sup> → वैद्युत; अथवा विद्युत् + अण्<sup>२</sup> → वैद्युत।

वि + √द्युत् ► चमकना, कान्तिमान् होना; णिच् ► प्रेरणार्थक प्रत्यय; विवप् ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय; अण्<sup>१</sup> ► स्वार्थ (प्रकृति के ही अर्थ) में प्रज्ञादि प्रत्यय। विद्युत् ► बिजली; अण्<sup>२</sup> ► वहाँ उत्पन्न, वहाँ से आया, उसका इन अर्थों में प्रत्यय।

### उद्घरण

अथ, किस कारण से यह वैद्युत कहलाता है? क्योंकि उच्चारित करने मात्र पर यह व्यक्त और महान् अन्धकार में ब्रह्म को प्रकाशित करता है, अतः वैद्युत कहलाता है।

—अथर्वशिर उपनिषद्

ओंकार को वैद्युत जानो ... यतियों के लिये यह भौंहों के बीच में ज्योति रूप में आविष्कृत होता है और अन्धकार को विदीर्ण कर प्रकाशित होता है, इसलिये वैद्युत कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

(१०२)

## वर्तुल

अर्थ

१ गोलाकार या मण्डलाकार २ घूमने वाला, प्रवर्तमान।

व्याख्या

तन्त्र ग्रन्थ बीजवर्णाभिधान के अनुसार ॐ का एक नाम **वर्तुल** है। यह शब्द √वृत् धातु (गोल घूमना) से उत्पन्न होता है और इसका अर्थ है गोलाकार या मण्डलाकार। इसके अतिरिक्त ॐ को ब्रह्माण्ड माना गया है (१०८), और हिन्दू खगोलशास्त्र के अनुसार ब्रह्माण्ड गोलकाकार है। ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्त में भी कहा गया है कि ब्रह्माण्ड गोलक की आकृति वाला है। गुरु की प्रशंसा में उक्त इस प्रसिद्ध श्लोक में ब्रह्माण्ड को पूर्ण मण्डल के आकार वाला कहा गया है—

*अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।  
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥*

“जिसके द्वारा पूर्ण मण्डल की आकृति वाला चर और अचर से युक्त [जगत्] व्याप्त है, उस पद को जिसने दिखाया है उन श्रीगुरु को नमस्कार है।” क्योंकि पद का अर्थ वस्तु और शब्द दोनों हैं, इस श्लोक का ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है—“जो पूर्ण मण्डल के आकार वाला (गोल) है तथा चर और अचर जगत् जिससे व्याप्त है, उस पद (ॐ) का साक्षात्कार कराने वाले श्रीगुरु को नमस्कार है।”

**वर्तुल** का एक और अर्थ है वह जो गोल घूमता है। संस्कृत में गोल या मण्डल को *निस्तल* (तल के बिना) कहते हैं, जिसका एक अर्थ है चलायमान। क्योंकि ॐ सृष्टि, स्थिति, और संहार के कारक तीन देवताओं का द्योतक है, यह सम्पूर्ण सृष्टिचक्र या ब्रह्मचक्र का भी द्योतक है। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि ब्रह्मचक्र ब्रह्म की महिमा से घुमाया जा रहा है। अथवा, चूँकि ॐ भूत, वर्तमान, और भविष्य का द्योतक है (३०), यह सतत भ्राम्यमान अनादि और अनन्त कालचक्र है, जैसा कि महाभारत और सुश्रुत संहिता में वर्णित है।

चूँकि ॐ का ही नाम **प्रणव** है और ॐ की आकृति गोल मानी गयी है, **प्रणवाकार** (प्रणव के आकार वाला) शब्द का अर्थ है गोलाकार या मण्डलाकार। शिव पुराण में कैलास पर्वत पर स्थित शिव के धाम को और पाँच मण्डलों से मण्डित शिव के रथ को **प्रणवाकार** कहा गया है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में **प्रणवाकार** शब्द का प्रयोग मन्दिर और विमान के विशिष्ट आकार के लिए हुआ है। तमिलनाडु के श्रीरङ्गम् में स्थित रङ्गनाथ स्वामी मन्दिर के गर्भगृह के ऊपर स्थित विमान (छतरी) को **प्रणवाकार-विमानम्** कहा जाता है। यह आकृति में अण्डाकार है। इस

प्रणवाकार-विमान का उल्लेख करने वाले एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है कि श्रीरङ्गशायी भगवान् (रङ्गनाथ) **प्रणव** के अर्थ के प्रकाशक हैं।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

$\sqrt{\text{वृत्}} + \text{उलच्} \rightarrow \text{वर्तुल}$

$\sqrt{\text{वृत्}}$  ► गोल घूमना, पहिये की भाँति घूमना; **उलच्** ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

**ओंकार वर्तुल** कहलाता है।

—बीजवर्णाभिधान



(१०३)

## वेदादि

अर्थ

१ वेद का प्रारम्भ २ वेदों में प्रथम ३ वेदों का कारण (मूल)।

व्याख्या

पुराणों और तन्त्रशास्त्रों में ॐ को **वेदादि** कहा गया है। **आदि** शब्द का अर्थ है प्रारम्भ, यथा अनादि (आरम्भरहित) शब्द में जो ॐ का नाम है (९२)। **आदि** का अर्थ प्रथम भी है—यथा वात्मीकि आदिकवि (प्रथम कवि) हैं, रामायण आदिकाव्य (प्रथम काव्य) है, और **महाभारत** का प्रथम पर्व **आदि पर्व** (प्रथम पर्व) है। अतः **वेदादि** का अर्थ है वेद का प्रारम्भ, अथवा प्रथम वेद—जैसा **वेदारम्भ** (१०४) नाम की व्याख्या में समझाया जायेगा। **तैत्तिरीय आरण्यक** में इन दोनों अर्थों की ओर संकेत है। आरण्यक में ॐ के विषय में कहा गया है “जो स्वर वेदादि (वैदिक मन्त्रों के प्रारम्भ) में उक्त है और जो वेदान्त (उपनिषदों) में प्रतिष्ठित है”

चूँकि **आदि** का एक अर्थ “कारण” या “मूल” भी है, वेदादि का एक अर्थ “वेदों का कारण” भी है। **शिव पुराण** और **स्कन्द पुराण** के अनुसार **वेदादि** शब्द का यही अर्थ है। पुराणों में यह शब्द ॐ और शिव दोनों के लिये प्रयुक्त हुआ है। **मनुस्मृति** में भी तीनों वेदों का उद्गम ॐ से बताया गया है (४)।

**राजराजेश्वरी तन्त्र** में ॐ का एक नाम है **वेदादिबीज**, जिसका अर्थ है “वह बीज जो वेदों का कारण है”। एक अन्य तन्त्र ग्रन्थ में देवी को **वेदादिमण्डिता** (ॐ द्वारा मण्डित) कहा गया है। **राम तापिनी उपनिषद्** में राम को **वेदादिरूप** और **ओंकार** कहा गया है। हरिदास की टीका के अनुसार इसका अर्थ यह है कि ॐ का रूप वेदों के प्रारम्भ में दृश्यमान होता है।

परम्परा

पुराण, तन्त्रा

व्युत्पत्ति

वेद + आदि → वेदादि।

**वेद** ► वेद; **आदि** ► १ प्रारम्भ २ प्रथम ३ मूल, कारण।

उद्गरण

**प्रणव** नामक मन्त्र **वेदादि** कहलाता है।

—शिव पुराण

हे प्रिये श्रुतियाँ (वेद) मुझसे ही होती हैं अतः मैं ही **वेदादि** हूँ। **प्रणव** मेरा वाचक हूँ। मेरा वाचक होने से यह भी **वेदादि** कहलाता है।

—पार्वती के प्रति शिव, शिव पुराण

जिनसे सब की योनि वेद अङ्गों सहित प्रवर्तित हुए हैं उन **वेदादि** (शिव) के ब्रह्मा ने अपने सम्मुख देखा।

—ओंकारेश्वर पर स्कन्द पुराण

**वेदादि** (ॐ) के द्वारा ध्यान करके एक-के-ऊपर-एक सूर्य, चन्द्र, अग्नि, और आत्मा के मण्डलों को क्रम से चिन्तन करना चाहिये।

—गरुड पुराण

**वेदादि** [शब्द का अर्थ] प्रणव है।

—बृहत्तन्त्रसार

**वेदादि** (ॐ), भुवनेश्वरी (हीम्), श्रीबीज (श्रीम्), और चतुर्थी विभक्ति से युक्त भृगु (शुक्राय) करके शुक्र का षडक्षर मन्त्र (ॐ ह्रीं श्रीं शुक्राय) बोलना चाहिये।

—रुद्रयामल तन्त्र

जिनका प्रारम्भ **प्रणव** है आप उन वाणियों (वेदों) के प्रभव (मूल) हैं।

—देवगण ब्रह्मा के प्रति, कुमारसंभव

(१०४)

## वेदारम्भ

अर्थ

वेदों का प्रारम्भ

व्याख्या

अमरकोश में कहा गया है कि ओंकार (२९) और प्रणव (३०) शब्द सम (समानार्थक) हैं। अमरकोश की रसाल टीका में दोनों शब्दों के व्याख्यान के पश्चात् कहा गया है कि ये दोनों वेदारम्भ के समानार्थी शब्द हैं। वेदारम्भ का अर्थ है “वेदों का प्रारम्भ”। वेद मन्त्रों के आरम्भ में (६९) और वैदिक अध्ययन के आरम्भ में (८) उच्चारित होने के कारण ॐ वेदारम्भ कहलाता है।

अथवा ॐ इसलिये वेदारम्भ है क्योंकि तीन वेद प्रारम्भ में ॐ ही थे। भागवत पुराण के नवम स्कन्ध में एक श्लोक के अनुसार सत्ययुग में एक ही वेद था—ॐ। पुराण के अनुसार त्रेता युग के प्रारम्भ में पुरुरवा राजा के समक्ष ही वेदत्रयी प्रकट हुई थी। इसके पहले के घटनाक्रम को शुकदेव सुनाते हैं। राजा पुरुरवा के गुणग्राम के विषय में सुनकर उर्वशी अप्सरा पृथ्वी पर आती हैं। राजा अप्सरा को उनके साथ रहने को कहते हैं। उर्वशी तीन अनुबन्ध राजा के समक्ष रखती हैं जिन्हें राजा स्वीकार कर लेते हैं। अप्सरा और राजा अनेक वर्षों तक एक-साथ रहते हैं। जब राजा द्वारा उर्वशी के एक अनुबन्ध का उल्लङ्घन होता है तब उर्वशी चली जाती है। पुरुरवा उसे ढूँढने जाते हैं और सरस्वती नदी के तीर पर उसे गर्भवती अवस्था में पाते हैं। पुरुरवा उर्वशी से पुनः अपने साथ रहने का अनुरोध करते हैं परन्तु उर्वशी कहती है कि राजा उसके साथ प्रतिवर्ष एक ही रात्रि व्यतीत कर सकते हैं। एक वर्ष पश्चात् जब राजा आते हैं तो उर्वशी को अपने पुत्र के साथ देखते हैं। जब पुरुरवा लौटकर अपने राजभवन जाते हैं तो सारी रात्रि उर्वशी का ही चिन्तन करते हुए बिताते हैं। तभी सत्य युग का अन्त होता है और त्रेता युग का प्रारम्भ होता है। तीनों वेद पुरुरवा के सकाश प्रकट होते हैं। इसके पश्चात् जब राजा दो अरणियों से अग्नि को प्रकट करते हैं तब जातवेदा अग्नि प्रकट होता है। राजा तीन वेदों की विद्या (त्रयी विद्या) के द्वारा अग्नि को त्रिवृत् अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय, और दक्षिणाग्नि (३)—इन तीन भागों में विभाजित करते हैं। और राजा जातवेदा को पुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं। शुकदेव यह सब सुनाकर परीक्षित से कहते हैं कि सत्ययुग में एक ही वेद था—सर्ववाङ्मय प्रणव (ॐ), एक ही देव थे—नारायण, एक ही अग्नि थी, और एक ही वर्ण था—हंसा। टीकाओं में समझाया गया है कि सत्य युग में प्रायः सभी सत्त्वप्रधान थे, जबकि त्रेतायुग में सब प्रायः रजःप्रधान हो गये, अतः कर्म का त्रिविध मार्ग प्रकट हुआ। उर्वशी के साथ रहने की पुरुरवा की तीव्र राजस इच्छा टीकाओं में वर्णित राजोभाव के प्राधान्य की ओर इङ्गित करती है।

व्यास स्मृति में उल्लिखित सोलह संस्कारों में वेदारम्भ ग्यारहवा है। वेदों के अध्ययन के प्रारम्भ के समय यह संस्कार किया जाता है।

परम्परा

भाष्य।

व्युत्पत्ति

**वेद + आरम्भ → वेदारम्भ।**

**वेद** ► वेद; **आरम्भ** ► प्रारम्भ।

उद्धरण

**ओंकार** और **प्रणव** ये दो **वेदारम्भ** के (समानार्थक शब्द हैं)।

—*अमरकोश* पर व्याख्यासुधा टीका

पहले एक ही वेद था—**प्रणव** (ॐ), जो सर्व वाङ्मय का निधान था।

—*भागवत पुराण*

(१०५)

## वेदात्मा

अर्थ

१ वेदों का आत्मा २ वेदों में गर्भिता

व्याख्या

लक्ष्मी तन्त्र में ॐ को वेदात्मा कहा गया है। आत्मा (आत्मन्) शब्द के अनेकार्थी होने के कारण इस नाम को कई प्रकारों से समझा जा सकता है। चूँकि आत्मा का प्राथमिक अर्थ आत्मतत्त्व या देही है, वेदात्म शब्द का अर्थ है वेदों का आत्मा अर्थात् साक्षात् स्वयं वेद। ॐ की तीन ध्वनियाँ तीन वेद मानी गयी हैं (४), इस प्रकार ॐ तीनों वेदों का एक आत्मा है।

आत्मा शब्द का अर्थ शरीर भी है। इस कारण से वेदात्मा का एक और अर्थ है वह जिसका शरीर या सार वेद हैं अर्थात् वेदों में गर्भिता। कई हिन्दू शास्त्रों में वेदोक्त के अर्थ में वेदात्मा शब्द का प्रयोग हुआ है। महाभारत में भीष्म युधिष्ठिर को तीन प्रकार के व्यवहार (विधियों) के विषय में बताते हैं, जिनमें दूसरा प्रकार है वेदात्मा व्यवहार—यह वह व्यवहार जिसका प्रत्यय (मूल) वेद में है। मत्स्य पुराण और लिङ्ग पुराण के अनुसार वेदात्मा इज्या (यज्ञ) श्रौत है। क्योंकि ॐ को वेदों में ब्रह्म कहा गया है (१२), यह वेदात्मा कहलाता है।

पुराणों में वेदात्मा सूर्य का नाम है। मार्कण्डेय पुराण में सूर्य को ब्रह्म माना गया है और वेदात्मा कहकर स्तुत किया गया है। पुराण के अनुसार तीनों वेद सूर्य की स्थिति के अनुसार दिन में भिन्न-भिन्न समयों पर ताप देते हैं—ऋग्वेद पूर्वाह्न के समय, यजुर्वेद मध्याह्न के समय, और सामवेद अपराह्न के समय। मत्स्य पुराण में नन्दी सूर्योपासन की एक पद्धति नारद को समझाते हुए सूर्य को वेदात्मा कहते हैं।

सूर्य के अतिरिक्त वेदात्मा शब्द वैष्णव, शैव, और शाक्त संप्रदायों में आहत ग्रन्थों में अनेक देवी-देवताओं और उनके रूप को वर्णित करने के लिये प्रयुक्त हुआ है। वाल्मीकि रामायण में ब्रह्मा राम को वेदात्मा कहते हैं। महाभारत में कृष्ण को दो बार वेदात्मा कहा गया है, जिनमें से एक प्रयोग भीष्मस्तवराज (कृष्ण के प्रति भीष्म की स्तुति) में भी है। लिङ्ग पुराण और कूर्म पुराण में ब्रह्मा शिव को क्रमशः वेदात्मरूप और वेदात्ममूर्ति कहकर नमन करते हैं। कूर्म पुराण के देवी माहात्म्य में हिमवान् राजा (हिमालय पर्वत) देवी (शक्ति) की १००८ नामों में स्तुति करते हैं और देवी के रूप को अशेषवेदात्मक कहते हैं। अन्यत्र कूर्म पुराण में ही वसुमना राजा चतुरानन ब्रह्मा की वेदात्ममूर्ति कहकर स्तुति करते हैं। इन सभी देवी-देवताओं का ॐ से तादात्म्य कहा गया है—सूर्य से (५०), राम से (२०), कृष्ण से (६), देवी से (२३), और ब्रह्मा से (२५)।

परम्परा

तन्त्रा

व्युत्पत्ति

वेद + आत्मन् → वेदात्मा।

वेद ► वेद; *आत्मन्* ► १ आत्मतत्त्व, सार २ शरीर, रूपा

उद्धरण

ओंकार वेदात्मा कहलाता है।

—लक्ष्मी तन्त्र

(१०६)

## विभु

अर्थ

१ सर्वशक्तिमान् २ सर्वगत, सर्वव्यापी ३ विस्तीर्णतम ४ आत्मा ५ स्वामी, नाथ ६ भव्य, महान् ७ शाश्वत, नित्य ८ स्थिर, दृढ।

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति कहती है कि ॐ **विभु** कहलाता है। अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में ॐ को **सर्वविभु** कहा गया है। **विभु** शब्द का प्राथमिक अर्थ है सर्वशक्तिमान्। ॐ हिन्दू धर्म में सर्वाधिक शक्तिमान् शब्द माना गया है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि सब गिराओं (वैदिक वाणी) में वे **एकाक्षर ॐ** हैं। **विभु** से मिलता-जुलता ॐ का एक अन्य नाम है **प्रभु**, जिसका अर्थ भी शक्तिमान् या समर्थ है (७७)।

वि + √भू धातु से व्युत्पन्न **विभु** शब्द के कई अर्थ हैं। **विभु** के प्राचीनतम अर्थों में एक यास्क के निरुक्त में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में प्रयुक्त **विभु** शब्द को निरुक्त में विस्तीर्णतम (सर्वाधिक विस्तार वाला) समझाया गया है। ॐ संपूर्ण ब्रह्माण्ड का व्यापक माना गया है, और उसके **विष्णु** (१०७) और **सर्वव्यापी** (८२) आदि नामों में उसकी सर्वव्यापकता की ओर संकेत किया गया है।

**विभु** का एक अन्य अर्थ है नानाभूत, नानाविध, या नानारूप। ॐ नानाभूत और नानारूप है क्योंकि वह निर्गुण ब्रह्म भी माना गया है और हिन्दू धर्म के सभी प्रमुख सगुण सम्प्रदायों का परम दैवत भी माना गया है। ॐ की तीन ध्वनियाँ क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, और शिव तो कही ही गयी हैं (१), ॐ का इन तीनों देवों से पृथक्-पृथक् तादात्म्य भी माना गया है (२७, १०७, ३३)। संयोगवश **विभु** शब्द ब्रह्मा, विष्णु, और शिव—इन तीनों का भी वाचक है। गीता में कृष्ण के लिये अर्जुन ने **विभु** शब्द का प्रयोग किया है।

**विभु** का एक अर्थ आत्मा भी है। सुश्रुत संहिता और चरक संहिता सट्श आयुर्वेद के ग्रन्थों में इस अर्थ में **विभु** का प्रयोग हुआ है। ॐ सभी आत्माओं, को व्याप्त करता है ऐसी मान्यता इस के नारायण (७०) सट्श नामों से प्रमाणित है। अतः ॐ के साथ भी आत्मा यह अर्थ भी संगत होता है।

**विभु** का अर्थ स्वामी या नाथ भी है। ब्रह्माण्ड के स्वामी परब्रह्म से अभिन्न (१३) होने के कारण ॐ **विभु** है।

**विभु** का एक और अर्थ है भव्य। **विभु** शब्द से ही निष्पन्न **वैभव** शब्द का अर्थ है भव्यता, अतिशय, या ऐश्वर्य। वि + √भू धातु से ही उत्पन्न **विभूति** शब्द का अर्थ है महान् शक्ति। ॐ सभी मन्त्रों में

महतम माना गया है (६९), अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उसके एक नाम का अर्थ भव्य या महान् है।

**विभु** के दो अन्य अर्थ हैं शाश्वत और दृढ। ये दोनों ॐ से संगत हैं। तीनों कालों में नाशरहित (त्र्यक्षर, पृ. १००) माने जाने के कारण ॐ शाश्वत है। ॐ का एक नाम **ध्रुव** भी है (६०), जिसका अर्थ है स्थिर।

परम्परा

वेद, स्मृति।

व्युत्पत्ति

वि + √भू + डु → विभु।

**वि** + √**भू** ► १ समर्थ होना २ व्याप्त करना ३ विभक्त होना, अनेक होना, नानाभूत होना; **डु** ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

ब्रह्मा ने सर्वविभु ॐ को देखा।

—गोपथ ब्राह्मण

ॐ **विभु** कहलाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति



(१०७)

## विष्णु

अर्थ

१ हरि, श्रीविष्णु २ सर्वव्यापक

व्याख्या

योगी याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार **विष्णु** भी ॐ का एक नाम है। हिन्दू शास्त्रों में कई स्थानों पर विष्णु और ॐ का तादात्म्य बताया गया है। **विष्णु पुराण** के अनुसार ॐ भगवान विष्णु हैं और **मत्स्य पुराण** के अनुसार विष्णु **प्रणव** कहलाते हैं। **मत्स्य पुराण** में ही मार्कण्डेय ऋषि द्वारा प्रलय के समय बरगद के पेड़ की डाली पर बाल रूप में विष्णु के दर्शन का प्रसंग वर्णित है। जब विष्णु अपना स्वरूप मार्कण्डेय को दिखाते हैं, ऋषि कहते हैं कि विष्णु रक्षण करने वाले ॐ हैं।

ॐ और विष्णु का एक-दूसरे से प्रत्यक्ष तादात्म्य तो कहा ही गया है, साथ ही दोनों के अनेक नाम समान हैं। इस पुस्तक में उल्लिखित ॐ के अनेक नाम **विष्णु सहस्रनाम** में प्राप्त होते हैं। सहस्रनाम के प्रथम दो नाम हैं **विश्व** (ब्रह्माण्ड) और **विष्णु** (व्यापक)—दोनों ॐ के भी नाम हैं। सहस्रनाम में ॐ का प्रसिद्ध नाम **प्रणव** दो बार आता है। ॐ के कुछ अन्य नाम विष्णु सहस्रनाम में हैं यथा **सत्य** (८३) जो तीन बार आता है; **अक्षर** (४७), **आदित्य** (७०), **ध्रुव** (६०), और **विभु** (१०६) जो दो-दो बार आते हैं; और **नारायण** (७०), **सूक्ष्म** (८८), **तार** (८९), और **हंस** (६६) जो एक-एक बार आते हैं। सहस्रनाम में विष्णु का एक और नाम है **स्पष्टाक्षर**। इस नाम पर अपने भाष्य में आदि शंकराचार्य कहते हैं कि स्पष्ट अक्षर **ओंकार** है।

ॐ और विष्णु के अनेक समान नामों से हिन्दू धर्म में निराकार ब्रह्म और साकार ब्रह्म का अभेद इङ्गित होता है। शब्दरूप होने से ॐ निराकार है। अनेक अवतार ग्रहण करने के कारण विष्णु साकार हैं। ॐ उपनिषदों और योग शास्त्रों में **परब्रह्म** कहा गया है (७७), और विष्णु वैष्णव पुराणों और वैष्णव मत में परब्रह्म है। दोनों एक ही माने गये हैं और दोनों के अनेक नाम समान हैं।

जैसा कहा जा चुका है (७), **विष्णु** शब्द √विष् धातु (व्याप्त करना) से उत्पन्न है और इसका शाब्दिक अर्थ है व्याप्त करने वाला। विष्णु को देश, काल, और वस्तु से अपरिच्छिन्न माना गया है। इसी प्रकार ॐ को सर्वदेश, सर्वकाल, और सर्ववस्तु का व्यापक माना गया है, यथा उसके **अनन्त** (७३), **त्रैकाल्य** (९०), और **सर्वव्यापी** (८२) नामों से ध्वनित होता है।

परम्परा

स्मृति, पुराण

व्युत्पत्ति

√विष् + नु → विष्णु।

√विष् ► व्याप्त करना; नु ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्धरण

ॐ विष्णु और अन्य पर्यायवाचियों से जाना जाता है।

—योगी याज्ञवल्क्य स्मृति

ओंकार भगवान् विष्णु हैं।

—विष्णु पुराण

विष्णु प्रणव माने गये हैं।

विष्णु ने कहा, 'मैं एकाक्षर मन्त्र ओंकार हूँ।'

—मत्स्य पुराण

(१०८)

## विश्व

अर्थ

१ विष्णु २ लोक, संसार ३ सर्वत्र प्रवेश करने वाला, सर्वव्यापी ४ वह जिसमें योगी प्रवेश करते हैं।

व्याख्या

इस माला का अन्तिम नाम है विश्व, जो विष्णु सहस्रनाम में विष्णु का प्रथम नाम है। इस नाम पर अपने विशद भाष्य में अनेक उपनिषदों (मुण्डक, तैत्तिरीय, कठ, प्रश्न, छान्दोग्य, माण्डूक्य, और नारायण), गीता, और मनुस्मृति की प्रामाणिक उक्तियों के आधार पर आदि शंकराचार्य इस निष्कर्ष पर आते हैं कि विश्व का अर्थ ॐ है। विश्व शब्द विष्णु सहस्रनाम के दस अन्य नामों का भाग है, यथा विश्वकर्मा, विश्वात्मा, विश्वमूर्ति, इत्यादि।

सर्वनाम के रूप में प्रयुक्त विश्व शब्द का अर्थ है सब या सभी। यही कारण है कि सभी वैदिक देवताओं को बहुधा विश्वेदेवाः कहा जाता है। संज्ञा के रूप में विश्व शब्द का अर्थ है “संपूर्ण लोक” अर्थात् ब्रह्माण्ड। कई उपनिषदों में विश्व या ब्रह्माण्ड को ब्रह्म या ॐ बताया गया है। माण्डूक्य उपनिषद् के प्रारम्भ में कहा गया है कि ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् अर्थात् “ॐ यह अक्षर ही यह सब है”। सर्वम् का तात्पर्य विश्व या ब्रह्माण्ड से है जो ॐ के द्वारा व्याप्त माना गया है।

विश्व शब्द √विष् धातु (“प्रवेश करना”) और ववन् उणादि प्रत्यय से निष्पन्न होता है। प्रवेश शब्द भी इसी धातु से उत्पन्न हुआ है। यह धातु विष्णु शब्द की √विष् धातु (“व्याप्त करना”) से भिन्न है। ववन् प्रत्यय को कर्ता के अर्थ का द्योतक ग्रहण करने से विश्व शब्द का शाब्दिक अर्थ “प्रवेश करने वाला” सिद्ध होता है। तात्पर्य यह है कि विश्व का अर्थ है सर्वव्यापी या सर्वत्र प्रवेश करने वाला (देखें विभु, पृ. १०६)। यद्वा, बलदेव विद्याभूषण के भाष्य के अनुसार विश्व वह है जो अपने से भिन्न सभी आत्मतत्त्वों में प्रवेश करता है।

विश्व शब्द में ववन् प्रत्यय प्रवेश क्रिया का कर्म भी द्योतित करता है। तदनुसार विश्व शब्द का अर्थ है “जहाँ जीव प्रवेश करते हैं”। गीता में ॐ के इस अर्थ की ओर संकेत है। कृष्ण उस अक्षर की चर्चा करते हैं जिसमें वीतराग यति प्रवेश करते हैं (विशन्ति)। भावदीप टीका के अनुसार ॐ ही वह अक्षर है जिसकी ओर कृष्ण का संकेत है। ॐ को असंदिग्ध रूप से ब्रह्म बताने वाली (१९) तैत्तिरीय उपनिषद् में ब्रह्म का वर्णन करते हुये कहा गया है कि ब्रह्म वह है जहाँ से ये जीव जन्म लेते हैं, जिसके द्वारा जन्म लेकर जीव जीते हैं, और प्रयाण करते हुए जिसमें जीव प्रवेश करते हैं (अभिसंविशन्ति)। इस श्रुति का कई टीकाओं में ऐसा अर्थ कहा गया है कि प्रलय के समय जीव ब्रह्म या ॐ में प्रवेश करते हैं। इसी कारण से ॐ को प्रलय भी कहा जाता है (७६)।

परम्परा

भाष्या

व्युत्पत्ति

√विश् + ववन् → विश्वा

√विश् ► प्रवेश करना, व्याप्त करना; ववन् ► कर्ता, करण, या अधिकरण के अर्थ में प्रत्यय

उद्धरण

विश्व शब्द से ओंकार अभिहित होता है।

—विष्णु सहस्रनाम पर आदि शंकर का भाष्य

जिस अक्षर में वीतराग यति प्रवेश करते हैं ... जिस अक्षर में अर्थात् प्रणव नामक वाचक में।

—गीता, तन्त्रत्य भावदीप टीका

(१०९)

ओम्

अर्थ

१ रक्षक २ सतत गतिमान् ३ कान्तिमान् ४ प्रेम करने वाला ५ तृप्त ६ सर्वज्ञ, अवगन्ता ७ व्यापक, सर्वव्यापी ८ श्रोता, सुननेवाला ९ स्वामी १० याचक ११ कर्ता १२ इच्छुक १३ दीप्त, दीप्तियुक्त १४ प्राप्तकर्ता १५ आलिङ्गन करने वाला १६ [भवबन्धन का] नाश करने वाला १७ आदाता, ब्रह्मणकर्ता १८ अपने को [अनेक में] विभाजित करने वाला १९ सतत वृद्धिमान्

व्याख्या

संस्कृत व्याकरण की अत्यन्त सुघट और वैज्ञानिक परम्परा में ॐ शब्द √अव् धातु और मन् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में सूत्रित व्याकरण के नियमों के अनुसार ॐ की यह एकमात्र विदित उत्पत्ति है।

√अव् धातु विशेष है। २००० धातुओं और उनके अर्थों के संकलन पाणिनीय धातुपाठ में √अव् के उन्नीस अर्थ परिगणित हैं। ये सभी धातुओं में अधिकतम हैं। यह एक अत्यन्त रोचक संयोग है कि संस्कृत का सर्वाधिक चर्चित शब्द उसकी व्याकरण द्वारा उसकी संपन्नतम धातु से निष्पन्न है। ॐ की √अव् से क्रमगत व्युत्पत्ति नीचे दर्शायी गयी है। यहाँ अ. का अर्थ है अष्टाध्यायी और उ.सू. का अर्थ है उणादि सूत्र। प्रक्रिया में प्रथम अव् धातु उ में और फिर ओ में परिवर्तित होता है।

√अव् रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्त्यवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वाम्यर्थ-याचन-क्रियेच्छा-  
दीप्त्यवाप्त्यालिङ्गन-हिंसादान-भाग-वृद्धिषु → उणादयो बहुलम् (अ. ३.३.१) → अवतोष्टिलोपश्च  
(उ.सू. १.१२८) → अव् + मन् → अव् + म् → ज्वर-त्वर-श्रिव्यवि-मवामुपधायाश्च (अ. ६.४.२०)  
→ ऊ + म् → सार्व-धातुकार्ध-धातुकयोः (अ. ७.३.८४) → ओ + म् → ओम्

सामान्यतः उणादि प्रत्ययों से उत्पन्न शब्द क्रिया के कर्ता को कहते हैं। परिणामतः, √अव् धातु के उन्नीस अर्थों के अनुसार ॐ शब्द के भी उन्नीस अर्थ हैं।

(१) √अव् का अर्थ है रक्षा करना, अतः ॐ का अर्थ है रक्षक या रक्षा करने वाला। ॐ का देवों के रक्षक (६८) और साथ ही जीवन, पञ्च प्राणों, और जीवों के रक्षक (३८) के रूप में वर्णन प्राप्त है।

(२) √अव् का अर्थ है जाना या गमन करना, अतः ॐ का अर्थ है [सतत] गतिमान्। ॐ के नाम वर्तुल (१०२) का अर्थ है वर्तमान या घूमने वाला।

(३) √अव् का अर्थ है कान्तियुक्त या सुन्दर होना, अतः ॐ का अर्थ है कान्तिमान्। ॐ के नाम दिव्य (६१) का अर्थ है सुन्दर या आकर्षक।

(४) √अच् का अर्थ है प्रेम करना, अतः ॐ का अर्थ है प्रेम करने वाला। स्कन्द पुराण में ॐ के नाम **प्रणव** की व्युत्पत्ति प्र + √नी धातु से बतायी गयी है (३१)। इस धातु का एक अर्थ है प्रेम करना।

(५) √अच् का अर्थ है तृप्त होना, अतः ॐ का अर्थ है संतृप्त। ॐ का शिव से तादात्म्य कहा गया है (३९) और शिव का ही एक नाम है **आशुतोष** अर्थात् सरलता से संतुष्ट या संतृप्त होने वाले।

(६) √अच् का अर्थ है अवगमन करना अर्थात् जानना या समझना, अतः ॐ का अर्थ है जाननेवाला या सर्वज्ञ। ॐ के दो नाम हैं **सर्वविद्** और **सर्वज्ञ** (८१), जिनका अर्थ है सब-कुछ जाननेवाला।

(७) √अच् का अर्थ है प्रवेश या व्याप्त करना, अतः ॐ का अर्थ है प्रवेश या व्याप्त करने वाला। **अक्षर** (४५), **हंस** (६६), **नारायण** (७०), **सर्वव्यापी** (८२), और **विष्णु** (१०७) आदि ॐ के अनेक नामों का अर्थ है व्यापक अथवा सर्वव्यापक। **गोपथ ब्राह्मण** में ॐ शब्द की उत्पत्ति √आप् धातु से बतायी गयी है, जिसका अर्थ है “व्याप्त करना”।

(८) √अच् का अर्थ है सुनना, अतः ॐ का अर्थ है श्रोता या सुननेवाला। ॐ का जीवों की प्रार्थना सुननेवाले करुणा के समुद्र विष्णु से तादात्म्य कहा गया है (१०७)।

(९) √अच् का अर्थ है शासन करना, अतः ॐ का अर्थ है शासक या स्वामी। ॐ के नाम **प्रभु** (७७) का अर्थ है स्वामी या शासन करने वाला।

(१०) √अच् का अर्थ है याचन करना (माँगना), अतः ॐ का अर्थ है याचक या माँगने वाला। ॐ को विष्णु माना गया है (१०७), जिन्होंने बलि से तीन क्रम (डग) भर भूमि की याचना की थी। ॐ की तीन ध्वनियों को विष्णु के तीन क्रम के रूप में भी समझाया गया है (७)।

(११) √अच् का अर्थ है किसी क्रिया को करना, अतः ॐ का अर्थ है कर्ता या करने वाला। त्रिदेव के रूप में (१) ॐ विश्व का सर्जन, पालन, और संहार करता है।

(१२) √अच् का अर्थ है इच्छा या कामना करना, अतः ॐ का अर्थ है इच्छुक या इच्छा करने वाला। ॐ को ब्रह्म माना गया है (१९), और **तैत्तिरीय उपनिषद्** में वर्णन आता है कि किस प्रकार एक ब्रह्म ने बहुत होने की कामना की और संपूर्ण विश्व की सृष्टि की।

(१३) √अच् का अर्थ है चमकना, अतः ॐ का अर्थ है दीप्त या चमकने वाला। ॐ के नाम **वैद्युत** (१०१) का अर्थ है चमकने वाला, और इसके एक और नाम **स्वर** (४८) का अर्थ है अपने-आप चमकने वाला।

(१४) √अच् का अर्थ है प्राप्त करना (अवाप्ति), अतः ॐ का अर्थ है प्राप्त करने वाला। **गोपथ ब्राह्मण** में ॐ की व्युत्पत्ति √आप् धातु से बतायी गयी है, जिसका अर्थ है प्राप्त करना या पाना (१७)। ॐ

को **सर्वविद्** (८१) भी कहा जाता है, जिसका एक अर्थ है “सब-कुछ पाने वाला”।

(१५) √अव् का अर्थ है आलिङ्गन करना (हृदय से लगाना), अतः ॐ का अर्थ है हृदय से लगाने वाला। सभी मनुष्यों और आत्माओं की गति (७०) होने के कारण ॐ सारे विश्व का आलिङ्गन करने वाला है।

(१६) √अव् का अर्थ है हिंसा करना या नाश करना, अतः ॐ का अर्थ है नाश करने वाला। ॐ के नाम **भवनाशन** (७७) का अर्थ है सांसारिक भाव का नाश करने वाला। ॐ के नाम **हंस** (६६) का एक अर्थ है [पापों का] नाश करने वाला।

(१७) √अव् का अर्थ है लेना, अतः ॐ का अर्थ है स्वीकार करने वाला। ॐ बहुधा कहे जाने वाला (४०) एक परब्रह्म है (१९), अतः सभी देवों को समर्पित वस्तुएँ ॐ को ही जाती हैं। एक प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है, “सभी देवों को किया गया नमस्कार केशव के प्रति जाता है”।

(१८) √अव् का अर्थ है भाग करना, अतः ॐ का अर्थ है [अपने-आप को] विभाजित करने वाला। परब्रह्म स्वरूप (१९) ॐ सभी भूतों के हृदय में **अन्तर्यामी** के रूप में रहने के लिये अपने को विभाजित करता है। **बृहद् आरण्यक उपनिषद्** के **अन्तर्यामी ब्राह्मण** में अन्तर्यामी ब्रह्म के इस सिद्धान्त का प्रतिपादन है।

(१९) √अव् का अर्थ है बढ़ना, अतः ॐ का अर्थ है सतत वृद्धिमान्। ॐ के **ब्रह्म** (७७) नाम का अर्थ है बढ़ने वाला या विस्तृत होने वाला।

परम्परा

व्याकरण, पुराणा

व्युत्पत्ति

**अव् + मन् → ओम्**

√अव् ► १ रक्षा करना २ जाना ३ सुन्दर होना ४ प्रेम करना ५ तृप्त होना ६ जानना, समझना ७ प्रवेश करना, व्याप्त करना ८ सुनना ९ शासन करना १० माँगना ११ [किसी क्रिया को] करना १२ इच्छा करना १३ चमकना १४ प्राप्त करना १५ आलिङ्गन करना १६ हिंसा या नाश करना १७ आदान करना, लेना १८ भाग करना १९ बढ़ना; **मन्** ► कर्ता के अर्थ में प्रत्यय।

उद्घरण

√अव् धातु से **मन्** प्रत्यय होता है और टिलोप होता है (म् शेष रहता है)। **अवति**, (√अव् का कर्ता) —यह ॐ है।

—उणादि सूत्र, तत्रत्य टीका

अवन (√अव् के भाव) के कारण यह ॐ कहा गया है।

—कूर्म पुराण



# नामसूची

## अ

अक्षर ([४७](#)), ([४६](#))

अद्वैत ([७१](#))

अनन्त ([७३](#))

अनादि ([७२](#))

अव्यय ([७४](#))

## आ

आदित्य ([७०](#))

आदिबीज ([४९](#))

## ई

ईशान ([६७](#))

## उ

उद्गीथ ([२](#)), ([४](#)), ([४०](#)), ([४१](#)), ([४२](#)), ([४३](#)), ([४४](#))

## ए

एक ([६३](#))

एकाक्षर ([६४](#))

ओ

ओंकार/ओङ्कार [\(१८\)](#), [\(२०\)](#), [\(२९\)](#), [\(३९\)](#)

ओम् [\(१\)](#), [\(२\)](#), [\(३\)](#), [\(४\)](#), [\(५\)](#), [\(६\)](#), [\(७\)](#), [\(८\)](#), [\(९\)](#), [\(१०\)](#), [\(११\)](#), [\(१२\)](#), [\(१३\)](#), [\(१४\)](#), [\(१५\)](#),  
[\(१६\)](#), [\(१७\)](#), [\(१८\)](#), [\(१९\)](#), [\(२०\)](#), [\(२१\)](#), [\(२२\)](#), [\(२३\)](#), [\(२४\)](#), [\(२५\)](#), [\(२६\)](#), [\(२७\)](#), [\(२८\)](#), [\(१०९\)](#)

ग

गुणजीवक [\(६५\)](#)

गुणबीज [\(६५\)](#)

त

तार [\(८९\)](#)

त्रिक [\(९२\)](#)

त्रिगुण [\(११\)](#)

त्रितत्त्व [\(६८\)](#)

त्रिदैवत [\(१\)](#)

त्रिदैवत्य [\(१\)](#)

त्रिधातु [\(९१\)](#)

त्रिधाम [\(३\)](#)

त्रिप्रज्ञ [\(९४\)](#)

त्रिप्रतिष्ठित [\(९५\)](#)

त्रिप्रयोजन [\(९६\)](#)

त्रिब्रह्म (४)

त्रिमात्र (१४), (४०)

त्रिमुख (३)

त्रिवस्थ (९७)

त्रिलिङ्ग (९३)

त्रिवृत् (९९)

त्रिस्थान (९८)

त्रैकाल्य (९०)

त्र्यक्षर (१००)

त्र्यवस्थान (२), (९८)

द

दिव्य (६१)

दिव्यमन्त्र (६२)

ध

ध्रुव (६०)

ध्रुवाक्षर (६०)

न

नारायण (७०)

निरञ्जन (७१)

## प

पञ्चरश्मि ([७२](#))

पञ्चाक्षर ([२६](#))

परब्रह्म ([७७](#))

परम ([७३](#))

परमाक्षर ([७४](#))

प्रणव ([१९](#)), ([२३](#)), ([३०](#)), ([३१](#)), ([३२](#)), ([३३](#)), ([३४](#)), ([३७](#)), ([३६](#)), ([३७](#)), ([३८](#)), ([३९](#))

प्रभु ([७७](#))

प्रलय ([७६](#))

प्रस्वार ([७७](#))

## ब

बिन्दुशक्ति ([७६](#))

ब्रह्म ([७७](#))

ब्रह्मबीज ([७८](#))

ब्रह्माक्षर ([७९](#))

## भ

भवनाशन ([७७](#))

## म

मन्त्रादि (६९)

मन्त्राद्य (६९)

र

रस (७८)

रुद्र (७९)

ल

लोकसार (६८)

व

वर्तुल (१०२)

विभु (१०६)

विश्व (१०८)

विष्णु (१०७)

वेदबीज (७८)

वेदात्मा (१०७)

वेदादि (१०३)

वेदादिबीज (१०३)

वेदारम्भ (१०४)

वैद्युत (१०१)

श

शब्द ([८७](#))

शुक्ल ([८७](#))

श्रुतिपद ([८६](#))

स

सत्य ([८३](#))

सर्वज्ञ ([८१](#))

सर्वपावन ([८०](#))

सर्वविद् ([८१](#))

सर्वव्यापी ([८२](#))

सूक्ष्म ([८८](#))

सूर्यान्तर्गत ([४४](#))

सेतु ([८४](#))

स्वर ([४७](#)), ([४८](#))

ह

हंस ([६६](#))